गुरुकुल कांगडी से " अलंकार "

यह मासिक पत्र गुरुकुल के स्नातकमण्डल की ओर से प्रे० सत्यव्रत जी सिद्धातालंकार के सम्पादकत्व में एक वर्ष से निकल रहा है। आर्य समाज के क्षेत्र में यह अपने ढग का अनूठा ही पत्र है । यह पत्र गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर विश्वास रखने वालों, प्राचीन आर्य सभ्यता से प्रेम करने वालों तथा वैदिक रहस्यों की खोज करने वालों के लिये अद्वितीय है। नये ग्राहकों को अलंकार का

शताब्दी – अंक मुफ्त

मिलेगा । अलङ्कार के शताब्दी अंक ने सब पत्रों के शताब्दी अंकों को मात कर दिया है । " मतवाला " लिखता है कि अलंकार के शताब्दी अङ्क ने रिकार्ड बीट कर दिया है। इस अंक में गुरुकुल के बहुत से चित्र दिये गये हैं । अलंकार का शताब्दी – अंक आर्य समाज के साहित्य में स्थिर रहेगा । मूल्य १२ आने से घटा कर ८ आने कर दिया गया है परंतु ' अलंकार ' के नये ग्राहकों को यह अंक मुफ्त मिलेगा ।

' अलंकार ' का नया वर्ष अगले महीने से प्रारंभ होने वाला है अतः दूसरे वर्ष के शुरू से ही ग्राहक बन जाइये । वार्षिक मूल्य तीन रुपया ।

प्रबन्धकर्ता–अलंकार गुरुकुल कांगडी
(बिजनौर ।)

सुखमार्ग

यदि आप शारीरिक, मानसिक,आत्मिक, वैज्ञानिक तथा अन्य विविध विषय विभूषित लेख पढना, बडे बडे विद्वान व शास्त्रों की गुप्तसे गुप्त शिक्षाप्रद सम्मतियां देखना और सुख से जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो इस सर्वोपयोगी मासिक पत्र के ग्राहक बनिये । वार्षिक मूल्य १॥) नमूना मुफ्त । इस में ग्राहकोंके प्रश्नोत्तर मुफ्त छपते हैं । ५ ग्राहक बनाने वालों को एक वर्ष तक मुफ्त मिलेगा ।

पता:—'सुखमार्ग' कार्य्यालय
बरामदी बुढांसी
(अलीगढ

हिन्दी कुरान

खण्डशः निकल रहा है। प्रथम खण्ड॥। द्वितीय खण्ड ॥।=)अर्बी की मूल आयतें मोटे नागरी अक्षरों में नीचे सरल भाषार्थ। मुसल्मानी मत का मर्म मालूम करना है तो ॥) भेज कर शीघ्र ग्राहक बनिये । ग्राहकों को प्रत्येक खण्ड सुविधा के साथ वी. पी द्वारा पहुंचता रहेगा ।

गृहिणी-सुधार ।

स्त्री शिक्षा की अमूल्य पुस्तक धर्मवीर स्वर्गीय पं लेखराम आर्य पथिक की लिखी स्वा श्रद्धानन्द की भूमिका सहित मू०॥।)
अन्यः-विचित्र जीवन-मुहम्मद का जीवन १.) सजि, ११) संगठन-संकीर्तन ।) शताब्दी संकीर्तन ।) प्रेम भजनावली ≡) बाल प्रश्नोत्तरी–) कन्या प्रश्नोत्तरी –)
प्रेम पुस्तकालय, फुलट्टी बाजार, आगरा.

लेखक- प्रोफेसर नन्दकिशोर विद्यालंकार

पुनर्जन्म.

भूमिका लेखक श्री. १०८ स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज

निश्चय जानिये आप इस संसारमें बहुत पुराने हैं, और सदा रहेंगे। इसलिये यदि आप को "मृत्यु" के इस भीषण नाटक का पूरा हाल जानना हो और यह जानना हो कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्माकी क्या गति होती है। पितृयान और देवयान मार्ग क्या हैं। उपनिषदों में स्थानस्थान पर दिये गये जीवन मरण के कितने ही रहस्यों को यदि आप सरल हिन्दी में पढना चाहते हैं। यदि आप जानना चाहते हैंकि। किस प्रकार आजकल के धुरन्धर पश्चिमीय विद्वान आपके प्राचीनतम वैदिक सिद्धान्तोंके आगे सिर झुकाते जाते हैं। पश्चिमके घोर नास्तिक वाद तथा डार्विन के विकासवाद की यदि आप तीव्र आलोचना पढना चाहते हैं तो इस अलौकिक ग्रन्थ को पढिये।

इस ग्रन्थको पढनेसे आपको प्रकृति के निराले पशुपक्षियों के अद्भुत प्रतिभाभरे कौतुकोंका पता लगेगा। सृष्टि उत्पत्तिके वैदिक प्रकरण को अधुनिक विज्ञानके साथ मिलाकर मनोहर रूपमें दर्शाया गया है। इस ग्रन्थसे आपको जर्मनी में किये गये घोडों पर नवीन परीक्षणों का वृत्तान्त विदित होगा। ग्रन्थका विषय दार्शनिक होते हुए भी उसे मनोरञ्जक भाषा में रक्खा गया है - इस लिये यह ग्रन्थ अतीव उपयोगी है। श्री. स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज भूमिका लेखक के अतिरिक्त अन्य विद्वान् क्या लिखते हैं देखिये:—

"ग्रन्थकर्त्ताने 'पुनर्जन्म' की सचाई को साधारण जन के आगे स्पष्ट तथा सरल भाषामें रखकर देशकी और विशेषतः हिन्दी साहित्यकी बडी सेवा की है।"

श्रीयुत डाक्टर गङ्गानाथ झा, वाइस चान्सलर अलाहाबाद युनिवर्सिटी।

"मेरी सम्मतिमें इस पुस्तकमें 'पुनर्जन्म' सिद्धान्तके मुख्य मुख्य अङ्गोंको सरलता के साथ विशदरूपमें रखनेमें ग्रन्थकर्ताको पूर्णतया कृतकार्यता हुई है। और मुझे यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि हिन्दीके विज्ञ पाठक इस पुस्तकका पूरा आदर करते हैं

(श्री० डॉ० प्रभुदत्त शास्त्री एम०ए०पी एच.डी, प्रेसिडेन्सी कालेज-कलकत्ता युनिवर्सिटी)

"ग्रथकर्ताकी मूल पुस्तकको मैंने देखा था और प्रशंसा की थी-मेरी सम्मतिको स्वीकार कर ग्रन्थकर्ता ने इसे प्रकाशित किया और हिंदी भाषाका उपकार किया यह देखकर मुझे बडी प्रसन्नता है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि पुस्तकका आदर हो। (बा० भगवानदास एम ०ए०बनारस)

इतनी उपयोगी पुस्तकका दाम केवल १।)

अदीनाः स्याम शरदः शतम् ।

यजुर्वेद. अ. ३६।२४

हम सौ वर्ष की पूर्ण आयुतक अदीन हों।

आम्हीं शंभर वर्षेंपर्यंत दीन न होतां रहावें.

May we live a life of self reliance for hundred years.

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा.)

श्री. लोकमान्य बाळ गंगाधर टिळक.

मनोरंजन प्रेस, मुंबई ४.

वर्ष ६
अंक ९
क्रमांक ६९

भाद्रपद
संवत १९८२
सितंबर
सन १९२५

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।
संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

हमारी उन्नति ।

यावत्तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥
अ. १२।१।३३

हे मातृभूमि ! (यावत्) जबतक (मेदिना) आनंददायक (सूर्येण) सूर्य प्रकाशसे (ते) तेरा विस्तार (अभि वि पश्यामि) चारों ओर विशेष प्रकार देखूंगा, (तावत्) तबतक (उत्तरां उत्तरां समां) अगली अगली आयुमें (मे चक्षुः) मेरी आंख आदि इंद्रियां (मा मेष्ट) क्षीण न हों ।

सूर्य प्रकाश के तेज के साथ तेजस्वी बनकर अपनी मातृभूमीके विस्तारका निरीक्षण करता हुआ मैं दीर्घजीवी बनूं और आरोग्यसे युक्त होकर, प्रतिदिन मेरी संपूर्ण शक्तियां बढतीं रहें और हम सब सदैव उन्नतिको प्राप्त होते रहें। और कभी क्षीण और दीन न बनें।

———:———

वैदिकयज्ञ और पशुहिंसा।

(कुछ आवश्यक उपयोगी निर्देश।)

(ले०-श्री. पं० धर्मदेवजी सिद्धान्तालङ्कार)

वैदिक यज्ञों में पशुहिंसाका विधान है वा नाहीं इस विषयमें बहुत देरसे विवाद जारी रहा है। स्वयं वैदिक साहित्यमें ऐसे भाग हैं जिनका अभिप्राय पशुहिंसा का समर्थक प्रतीत होता है, जब तक निम्नलिखित आवश्यक निर्देशों को ध्यानमें न रक्खा जाए। इस लेखमें निम्न लिखित निर्देश देना पर्याप्त समझता हूं जो इस विषयमें अवश्य उपयोगी सिद्ध होंगे।

(१) सम्पूर्ण वैदिक और लौकिक साहित्य में यज्ञ का एक प्रसिद्ध पर्यायवाची शब्द "अध्वर" पाया जाता है। निरुक्तकार यास्काचार्यने 'अध्वर'की'ध्वरतिर्हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः'यह निरुक्ति बताई है जिसका स्पष्ट अर्थ यही है कि हिंसारहित कर्म ही का नाम अध्वर अथवा यज्ञ है। क्या यह माना जा सकता है कि हमारे पूर्वज आर्य इतने असम्बद्ध प्रलापी थे कि यज्ञको अध्वरनामसे पुकारते हुए वे उसके अन्दर गायों बैलों घोडों बकरियों और यहांतक कि पुरुषों कीभी बलियां देना धर्म समझते थे! हमारे विचारमें यह बात नहीं आसकती।

(२)पर इस पर यह कहा जाता है कि साधारण तौर पर अहिंसाको अच्छा मानते हुए भी प्राचीन आर्ययज्ञोंमें हिंसा को वेदविहित होनेसे अहिंसाके तुल्य पुण्य हेतु समझते थे इसी लिये शास्त्रकारोंने कहा है "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति "

इसके उत्तरमें हम यह कहना चाहते हैं कि (१) "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" यह किसी प्रामाणिक ग्रंथका वचन नहीं। (२) मनुस्मृतिमें इस आशयके—

या वेदविहिता हिंसा विहिताऽस्मिंश्चराचरे।
अहिंसामेव तां विद्यात् ।"

इत्यादि श्लोक आये हैं। इस प्रकारके वाक्यों को प्रामाणिक मान लेने परभी उनका इतना ही अभिप्राय है कि वेदमें हिंस्रपशु दुष्ट सर्प इत्यादि और दुष्ट राक्षस शत्रुओंकी हिंसाका जो प्रतिपादन यजु०अ०१३

मयं पशुं मेधमग्ने जुषस्व ....मयं ते शुगृच्छतु(मं० ४७)गौरं ते शुगृच्छतु (मं०४८) गवयं ते शुगृच्छतु (मं.४९) शरभमारण्यमनु ते दिशामि....शरभं ते शुगृच्छतु (मं ०५१)

तथा—'चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम्।
अहे म्रियस्व मा जीवी ॥अथ० ५।१३।४
सहमूलमिन्द्रवृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।

इत्यादि मंत्रों में किया गया है वह पापजनक नहीं क्यों कि उसका उद्देश्य जनता की रक्षाका है। यज्ञ का मुख्य तात्पर्य ही जनता के हितसम्पादन का है इसी लिये ब्राह्मणों में कहा है —

"यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते॥"

इसी [illegible] से ही यजुर्वेद के प्रथम अध्यायके प्रथम ही मन्त्र में यज्ञको 'श्रेष्ठतम कर्म' के नामसे पुकारा गया है। जब सब धर्मशास्त्र तथा योगदर्शनादि-

अहिंसा सत्यमस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः॥
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥
'अहिंसा सत्यास्तेयऽपरिग्रहा यमाः '

के अनुसार अहिंसा को सब से उच्च स्थान देते हुए उसे सब वर्णोंके लिये धर्म बतलाते हैं तब यज्ञ जैसे श्रेष्ठतम कर्म में उसका प्रत्यक्ष उल्लंघन किस प्रकार ठीक माना जा सकता है !

(३) यज्ञ इस शब्द के यौगिकार्थ में भी पशुहिंसा की गन्धतक नहीं। यजधातु के देव-पूजा, संगतिकरण और दान ये तीन अर्थ बताये गये हैं। इन के अन्दर हिंसा का भाव प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष किसी रूपसे नहीं पाया जाता इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता।

(४) मुख्यतः यज्ञ के पर्यायवाची मेधशब्दको 'अजमेध, गोमेध, पुरुष मेध, अश्वमेध' इत्यादि शब्दों में देखकर वैदिकयज्ञों में पशुहिंसा विधान का भ्रम हुआ यह साफ प्रतीत होता है। मेध धातुके अर्थोंमें से एक अर्थ हिंसा है इस में सन्देह नहीं किन्तु केवल वही अर्थ नहीं है। बुद्धिवृद्धि तथा संगमन अथवा एकता उत्पन्न करना और पवित्र करना ऐसा भी उसका अर्थ है। ऐसी अवस्था में कोई कारण नहीं कि हिंसा अर्थ पर ही क्यों आग्रह किया जाए जब कि निम्नलिखित अन्य पुष्ट प्रमाणों तथा सामान्य बुद्धि द्वारा हिंसा अर्थ का ग्रहण सर्वथा असंगत प्रतीत होता है।

क—पुरुषमेध, पुरुषयज्ञ और नृयज्ञ ये तीनों शब्द पर्यायवाचक हैं और मनुस्मृति में नृयज्ञ की व्याख्या

'नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्'

इस प्रकार की गई है जिसका अर्थ यह है कि नृयज्ञ वा नृमेधसे मनुष्यों की यज्ञमें बलि देनेका मतलब नहीं बल्कि उत्तम विद्वानों विशेषतः अतिथियों की पूजासे उसका तात्पर्य है।

ख—गोमेध का ही विधान 'गोमेज' के नामसे पारसियों के धर्मग्रन्थ 'जिन्द अवस्ता' में पाया जाता है वहां हॉग इत्यादि कई विद्वान टीकाकारोंने उसका अर्थ कृषिद्वारा भूमिका सुधार लिया है क्योंकि वैदिक संस्कृत की तरह जिन्द की भाषामें भी गौ-शब्द के गाय और भूमि दोनों अर्थ हैं। वैदिक साहित्य में क्यों न गोमेध शब्दका वही अर्थ स्वीकार किया जाए और क्यों गाय की बलिपर ही कमर कसली जाए यह कुछ समझमें नहीं आता? इस के अतिरिक्त जब कि हम सारे वैदिक साहित्यमें गौको अघ्न्याके नामसे पुकारा हुआ पाते हैं।—

'अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीम्'

'वत्सं जातमिवाघ्न्या' इत्यादि)

और उसके मारनेका

'गां मा हिंसीरदितिं विराजम्' यजु० १३।४३

इत्यादि में स्पष्ट निषेध पाते हैं इतना ही नहीं इतिहास में दिलीप इत्यादि बड़े सम्राटोंतक को गोरक्षार्थ प्राणों की आहुति देने के लिये उद्यत पाते हैं तब तो हमें निश्चित तौर पर इसी परिणाम पर पहुंचना पड़ता है कि गोमेध का अर्थ गोपद्वाच्य भूमि इन्द्रिय वाणी इत्यादि को पवित्र करना है नाकि गरीब गाय की गर्दन पर छुरी चलाना जिसके महा अनर्थ होने में कोई शंका नहीं हो सकती जैसा कि महाभारत में एकस्थान पर कहा है —

अघ्न्या इति गवां नाम,क एता हन्तुमर्हति।
महच्चकाराऽकुशलं, वृषं गामालभेत्तु यः॥

तैत्तिरीय ब्राह्मणमें —

"ऊर्जा वै गौः" "अन्नं वै गौः"

इत्यादि वचनों से भी गोमेधका यथार्थ अभिप्राय पता लग सकता है।

ग.—इसी प्रकार अजमेध, अश्वमेध इत्यादिके भी अन्य अर्थों का ब्राह्मणग्रन्थों तथा महाभारत में स्पष्ट निर्देश किया गया है। उदाहरणार्थ —

अजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।
अजसंज्ञानि बीजानि छागान्नो हन्तुमर्हथ ॥ म० भा०अनुशासनपर्व। और शतपथ के —

राष्ट्रं वा अश्वमेधः, वीर्यं वा अश्वः ॥ शत०ब्रा० १३।१।६।७ इत्यादि वचन सुस्पष्ट हैं।

महाभारत की इसविषयक साक्षि कि पशुहिंसा का वेदमें प्रतिपादन नहीं पर इसे वेद का अर्थ न समझनेवाले नास्तिक धूर्तों ने प्रवृत्त किया है विशेष दर्शनीय है।

सुरा मत्स्याः पशोर्मांसमासवं कृशरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद् वेदेषु विद्यते॥
अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः।
संशयात्मभिरव्यक्तैर्हिंसा समनुवर्णिता ॥

इतनी स्पष्ट साक्षिके होते हुए भी वैदिक यज्ञों में हिंसा का विधान है इस बात को कौन बुद्धिमान् पुरुष माननेको तैय्यार हो सकता है ?

(५) ब्राह्मणग्रन्थों में यज्ञप्रकरण में आलम्भका बहुत प्रतिपादन है। अग्नीषोमीयं पशुमालभेत इत्यादि वाक्यों की वहां भरमार है।यजु०अ०२४में–भी

'वसन्ताय कपिंजलानालभते, ग्रीष्माय
कलविंकान् , वरुणाय चक्रवाकान् ,
मित्रावरुणाय कपोतान्, भूम्या आखूना–
लभते प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन आलभते "

इत्यादि अनेक मंत्रांश पाये जाते हैं। ऐसे वाक्यों में एकदमसे आलंभका अर्थ मारना कर लिया जाता है। पर निम्न लिखित वाक्योंमें 'आलभ' का प्रयोग स्पष्ट प्रमाणित करता है कि उसका सीधा अर्थ स्पर्श करना है।

(क) कुमारं जातं पुराऽन्यैरालम्भात् सर्पिर्मधुनी हिरण्ययेन प्राशयेत्। पारस्कर गृ० सू०

यहां आलंभ का अर्थ मारना कोई भी न करेगा। सीधा अर्थ यही है कि बालक के उत्पन्न होनेपर अन्योंके स्पर्शसे पूर्व उसे घृत और शहद चटावे।

(ख) पारस्करगृह्य सूत्र उपनयन प्रकरणमें–

'अथास्य दक्षिणांसमधि हृदयमालभते।'

ऐसा पाठ है। यहां भी विद्यार्थी के दक्षिण कन्धे और हृदयके पास के प्रदेश को छूनेका विधान है न कि बेचारी गरीब विद्यार्थीके हृदयको फाड डालने का।

(ग) विवाह प्रकरण में भी-

'दक्षिणांसमधि हृदयमालभते'

इन्हीं शब्दों द्वारा वरके वधूके स्कन्ध तथा हृदय स्पर्श करनेका विधान है। यहां कौन मूर्ख मारनेका ग्रहण करेगा ?

(घ)–सुश्रुत कल्पस्थान अ० १ में—

'आलभेदसकृद्दीनः करेण च शिरोरुहान्।'

इस वाक्य में "दीन बार बार हाथ से सिर के बालों का स्पर्श करता है" यही अर्थ स्पष्ट है। मीमांसा दर्शन अ० २ पा० ३ सू० १७ पर सुबोधिनी टीकाकार ने भी–

'वत्सस्य समीपे आनयनार्थं अलंभःस्पर्शो भवति'

इस लेख द्वारा आलम्भका स्पर्शार्थकत्व बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है। इस विषयमें अन्य भी अनेक वाक्य सारे वैदिक और लौकिक साहित्य में से उद्धृत किये जा सकते हैं पर लेख विस्तार के भयसे ऐसा करना उचित नहीं। आशा है मांसलोलुप, वैदिक साहित्य में 'आलभेत' पद देखते ही गरीब जानवरों के गलों पर छुरी चलाने पर कमर न कसलेंगे बल्कि प्यार से उन्हें स्पर्श किया करेंगे। विशसन संज्ञपन को भी मारनेके अर्थ में ग्रहण किया जाता है पर जैसा कि इन के धात्वर्थसे स्पष्ट है इन पदों से उचित शिक्षा देने और ज्ञान दिलानेका अभिप्राय है। उपनिषदों में-

" कामक्रोधलोभादय: पशव:"

ऐसा अनेक स्थानोंपर स्पष्ट लिखा ही है अत: इन आन्तरिक पशुओंका हनन करके मनुष्यको वास्तविकरूपमे मनुष्य बनाया जाए यही यज्ञका तात्पर्य है और इस प्रकार गरीब पशुओंकी नहीं बल्कि पशुभाव की हिंसा का वहां विधान है ऐसा तत्त्वदर्शी लोग मानते हैं।

(६) महाभारत पुराणादि पढने से साफ पता लगता है कि यज्ञ में पशुहिंसा के विषयमें बहुत देरसे विवाद चलता आया है यहांतक कि 'देव' पशु हिंसा के समर्थक बताये गये है। पर एक बात सर्वत्र स्पष्ट दिखाई देती है जो मेरे विचार में बडी महत्त्वपूर्ण है वह यह कि ऋषिलोग सब जगह अहिंसात्मक यज्ञ का ही समर्थन करनेवाले रहें हैं। वे एक स्वरसे —

' न हिंसा धर्म उच्यते। '

'नैष धर्म: सतां देवा यत्र वध्येत वै पशु:।।

इत्यादि पवित्र नाद को ही सदा सर्वत्र गुंजाते रहे है। यहां तक कि पक्षपातवर्श वसुमहाराज के अन्याय करने परभी ऋषि नि:शंक होकर उसे शाप दे डालते हैं और उसकी अधोगति हो जाती है। किसीभी कथा को देख लीजिये ऋषियों का सर्वत्र अहिंसात्मक पक्ष बताया गया है। यह बात इतनी महत्त्वपूर्ण इसलिये है कि ऋषि साक्षात्कृत धर्मा और मन्त्र-द्रष्टा होते हैं वेद और धर्म के विषय में सबसे अधिक प्रामाणिकता उन्हीं की है इस विषयमें कोई अणुमात्र ही संदेह नहीं कर सकता। '(देव)' विद्वानों को अवश्य कहते हैं पर वे सब वेदों के तत्त्वदर्शी होते हैं ऐसा नहीं कह सकते। देवशब्दका प्रयोग पारसियों के धर्मग्रन्थोंमें भी सर्वत्र निन्दात्मक है पर वेदमें भी उस का सब जगह अच्छे ही पुरुषों के विषयमें उपयोग नहीं कहा जा सकता उस के क्रीडा, स्वप्न मद इत्यादि धात्वर्थ लेकर निन्दात्मक प्रयोग संभव है।

' मा शिश्न--देवा अपि गुर्ऋतं न : '

इत्यादि मन्त्र इस सम्बन्धमें देखने योग्य है। ऐसी अवस्था में ऋषियों का सर्वत्र एक स्वरसे यज्ञमें पशुहिंसा का निषेध करना और अजमेध इत्यादिकी अन्य व्याख्या महत्त्वपूर्ण है। देवों का मांस गृध्र यह विशेषण भी महाभारत पुराणादि में प्रयुक्त हुआ है वह उनके चारित्रपर अच्छा प्रकाश नहीं डालता। केवल पठित लोगोंकी अपेक्षा तत्त्वदर्शी ऋषियों की बातों और सिद्धान्तों का बहुत अधिक महत्त्व है इससे कौन इन्कार कर सकता है। कई जगह मन्त्रार्थ के विषय में संशय तो बडे बडे विद्वानों को भी रहे हैं अबभी हैं और बहुत देरतक रहेंगे इससे हम इन्कार नहीं करते।

(७) वेदसंहिताओंकी तरह जिन्द अवस्ता नामक पारसियोंके धर्मग्रन्थ में भी 'यस्न' नामसे यज्ञों का विधान है। दर्श पौर्णमास गोमेध इत्यादिकी भी थोडे नामभेदसे विधान है पर हिंसा का प्रतिपादन नहीं विशेषत: गौके प्रति तो बहुत ही अधिक आदर भाव दिखाया गया है यह बात भी वैदिक यज्ञोंका वस्तुत: अहिंसात्मक होने का साफ समर्थन करती है।

(८) प्राय: यह माना जाता है कि गौतमबुद्ध के आनेसे पूर्वतक सब यज्ञों में पशुहिंसा को मानते और किया करते थे। और भारतवर्षमें सब से पूर्व हिंसात्मक यज्ञों के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाने वाले श्री गौतमबुद्ध ही हुए हैं। वास्तव में देखा जाए तो यह बात अशुद्ध है। सुत्त निपातके ब्राह्मण धार्म्मिक सुत्त नामक ग्रन्थमें गौतमबुद्धके प्राचीन ब्राह्मणों के धर्म के विषयमें प्रश्न किया गया है। उस प्रश्नके

उत्तर में अन्य विषयों की व्याख्या करते हुए गौतम बुध्दने स्पष्ट बताया है कि "प्राचीन ब्राह्मण लोग तथा मुनिलोग अहिंसा व्रतका सदा पालन करते थे।यज्ञ भी वे धान्य तिल बीज इत्यादि से किया करते थे पशुओं की बलि वे न डालते थे। पीछे से इक्ष्वाकुराजा के समय ब्राह्मणों को लोभने आसताया। बहुतसे मन्त्र श्लोक इत्यादि के बनाकर वे राजाके पास गये और बोले कि हम तुम्हें अजमेध, गोमेध, अश्वमेध इत्यादि यज्ञ कराएंगे जिन के करनेसे तुम्हें सीधे स्वर्ग की प्राप्ति होगी"। जब गौएं यज्ञवेदिमें काटी गईं तब ३ रोगों के स्थान में १०१ रोग हो गये और संसार में अशान्तिका साम्राज्य होगया" ऐसा बुध्द भगवान् ने कहा है। यज्ञ में पशुहिंसा की परिपाटी कबसे चली इस विषय में बुध्द भगवान् की उस उक्ति को यदि यथार्थ माना जाए तो स्पष्ट पता लगेगा कि वैदिक कालमें यज्ञोंमें पशुहिंसा न की जाती थी पीछेसे स्वार्थ परायण मांसलोलुप घमंडियोंने उसे चलाया। यही बात महाभारतके —

कामात्क्रोधाच्च लोभाच्च, लोल्यमेतत्प्रवर्तितम् ।
अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः ।
संशयात्मभिरव्यक्तैर्हिंसा समनुवर्णिता ॥

इत्यादि श्लोकोंमें भी कही गई है। मांसलोलुप इस लिये कहा है कि यज्ञ में इस प्रकार बलि देकर खाने का विधान किया गया है यहांतक कि न खानेवाले के लिये मनुस्मृति इत्यादि के प्रक्षिप्तभागों में —

नियुक्तस्तु यथान्यायं, यो मांसं नात्ति मानवः ।
स प्रेत्य पशुतां याति, संभवानेकविंशतिम् ॥

इत्यादि श्लोकों द्वारा २१ जन्मतक पशुयोनिमें जाना लिख मारा है। इस सब को मांसलोलुप स्वार्थियों की लीला को छोडकर और क्या कहा जा सकता है! इस प्रकार स्वयं गौतमबुध्द के वचनसे भी वस्तुतः प्राचीन कालमें प्रारम्भ में हिंसा न की जाती थी यह बात साफ प्रमाणित होती है॥

(९) धर्मग्रन्थों को वैद्यक ग्रन्थों के साथ तुलना करके अध्ययन करने से इस विषय पर नया प्रकाश पडता है। हमें वैद्यकग्रन्थोंके अनुशीलन से पता लगता है कि अश्व ऋषभ, वराह, अज, महिष, मेष, मृग, रुधिर, इत्यादि शब्द क्रमशः अश्वगन्धी, ऋषभनामक कन्द, वराही कन्द, अजमोद, महिषाक्ष गुग्गुल, चकवड़ वा मेषपर्णी, सहदेवी बूटी, केशर इत्यादि औषधिवनस्पतियों के वाचक भी है।उदाहरणार्थ चरक चिकित्सा प्र० अं० १ में 'अजा नामौषधि रजशृंगीति विज्ञायते'

इत्यादि अजा के विषयमें लिखा है ऐसे ही अन्योंका औषधिवाचकत्व स्पष्ट प्रमाणोंद्वारा सिध्द किया जा सकता है। इस दृष्टि से विचार करने पर बहुत से मन्त्रों का अर्थ खुल जाता है।

(१०) अन्त में मैं इतना ही यहां निर्देश करना चाहता हूं कि सामान्य बुद्धि द्वारा इस विषयका विचार किया जाए तो एक नादान से नादान बच्चा भी कह देगा, कि यज्ञ जैसे कर्म में हिंसा करके उससे स्वर्गप्राप्ति की आशा सरासर मूर्खता है। धर्मके निर्णय में तर्क भी एक साधन शास्त्रकारोंने स्वीकार किया है।

'आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥

इत्यादि मनुस्मृति के श्लोकों में तो शास्त्रानुकूल तर्क को धर्मशास्त्रमें अत्यावश्यक माना गया है उस दृष्टिसे विचार करनेपर हम यज्ञमें पशुहिंसा के सिद्धान्तपर हँसेबिना नहीं रह सकते। चार्वाकसम्प्रदाय चाहे कितना भी निन्दित क्यों न हो पर उसका यह तर्क कि —

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टाम गामष्यति ।
स्वापिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥

अर्थात् यदि ज्योतिष्टोमादिमें मारा हुआ पशु स्वर्गको चला जाता है तो यजमान अपने पिता को यज्ञ में क्यों नहीं मार डालता ताकि उसे भी सीधे स्वर्गकी प्राप्ति हो ? तर्क की दृष्टिसे अशुद्ध नहीं कहा जा सकता ! इस विषयमें विशेष विस्तारसे लिखनेकी कुछ आवश्यकता नहीं प्रतीत होती ।

इन निर्देशोंको ध्यानमें रखनेसे हमें पता लग सकता है कि वैदिक यज्ञ वस्तुतः पशुहिंसाके समर्थक नहीं हैं। कई कई मन्त्रों के अर्थोंको ठीक तौर पर हम अभी समझने में असमर्थ हैं उनपर विचार करना चाहिये पर इतना तो हमें निश्चय है कि वेदमें परस्पर विरोध नहीं अतः हमें अपने अज्ञान की दशामें यह कहने का अधिकार नहीं कि वेदके अमुक अमुक मन्त्रों में पशुहिंसाका समर्थन है । अन्त में हम वेदके शब्दों में यही प्रार्थना करते हैं कि—

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि
समीक्षन्तां मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि
समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ इन्द्रो
विश्वस्य राजति शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

क्या वेदों में यज्ञों में पशुओं की बलि करना लिखा है?

(लेखक- श्री पुरुषोत्तमलाल मुख्याध्यापक गुरुकुल बेट सोहनी)

जो मनुष्य मांस खाते हैं और यज्ञों में पशुओं की बलि करना मानते हैं वह इस वेद मन्त्र की ओर दृष्टि डालें—:

" अक्ष्यौ निविध्य हृदयं निविध्य जिह्वां नि
नितृन्धि प्रदतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं
श्रृणीहि " ॥ अथर्व ५ । २९ । ४

(अक्ष्यौ)दोनों आंखें (निविध्य)छेद डालो(हृदयं) हृदय (निविध्य)छेद डाल(जिह्वां) जीभ(नितृन्धि)काट डाल (दतः) दांतको (प्रमृणीहि) तोडदे । (यतमः) जिस किसी (पिशाचः) मांस भोजी पिशाचने (अस्य) इसका (जघास) भक्षण किया है (यविष्ठ) हे महाबलवान (अग्ने) विद्वान पुरुष (तम्) उसको (प्रति) प्रत्यक्ष (श्रृणीहि) टुकडे करदे ॥ और देखिये:—

"न कि देवा इनीमसि न क्यायोपयामसिमन्त्र श्रुत्यं चरामसि । " सामवेद छ० अ० २ ख० ७ मं२

(देवाः) हम उपासक लोग (न कि इनीमसि) हिंसा न करें (आ) सब ओरसे (नाकि योपयामसि) किसी को अज्ञानयुक्त न करें । वेद तो कहते हैं कि सब का कल्याण हो, पशु हो या मनुष्य, यथा—

" ॐ इन्द्रो विश्वस्य राजति शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे। " (य० ३६ । ५)

(विश्वस्य) जगत् का (राजति) राजा है, व (नः) हमें और (द्विपदे) दोपाय, मनुष्यादिके लिये(शम्) सुखकारक और (चतुष्पदे) चौपाय, गौ आदिके लिये (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो। जो लाभदायक पशु है उनको मारना बडा पाप है। हां हानिकारक जो पशु हैं उनको मारना चाहिये जिससे यश भी प्राप्त हो।

हमारे ऋषियोंका कथन है कि जो जिसकी हिंसा करता है वही उसी की योनि को प्राप्त होगा और उससे मारा जाएगा और खाया जाएगा। जो जैसा कर्म करता है उस को वैसाही फल प्राप्त होता है। यथा-

"मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः।"

यहां मैं जिसके मांस को खाता हूं वह परलोकमें मुझे भी खायगा।

वेदों में कहीं नहीं लिखा कि यज्ञों में पशु ओं की बलि करनी चाहिये यह वाममार्गियोंका चलाया हुआ मत है। मांस और मदिरा का सेवन वैदिक काल में ऋषि और मुनियों से कभी भी नहीं किया जाता था।

हम भी मानते हैं हमारे वेद और शास्त्र कहते हैं कि जो मद्य और मांस का सेवन करते हैं वे राक्षस और दस्यु है। हमारे वैदिक काल में ऋषि लोग मांस नहीं खाया करते थे। पुनरपि उस समय मांस मदिरासेवन करनेवाले मनुष्य अवश्य थे और वे राक्षस दस्यु कहलाते थे। परन्तु वेद भगवान प्राणी मात्रको हिंसा से बचनेका उपदेश देता है। ऋषिलोग स्वाभाविकतया अहिंसाप्रिय थे, क्योंकि विना हिंसा-त्याग किये मनुष्य ऋषि नहीं हो सक्ता और ईश्वर को भी कभी प्राप्त नहीं कर सक्ता। प्रिय सज्जनो! यह वार्त्ता विचारनीय है जिन्हों ने वेदों को पढा है वे तो इस बात को मानते हैं और अनपढ मनुष्य भी जानते है कि "अहिंसा परमो धर्मः" यह वैदिक सिद्धान्त है।

जब वेदों में एक स्थान नहीं सहस्रों स्थान लिखा है। "यजमानस्य पशून् पाहि, अविं मा हिंसीः गां मा हिंसीः, एकशफं मा हिंसीः" इत्यादि। अर्थात् यजमान के पशुओं की रक्षा करो, भेड मत मारो। गाय मत मारो। एकशफ पशुओं को मत मारो। तब संदेह ही कैसे हो सकता है?

संकल्प शक्तिका विकास।

परिच्छेद २

(ले०- श्री. उदयभानु भैय्याजी)

पाठ १

सम्+कल्प् से संकल्प शब्द बनता है। सम् का अर्थ है अच्छा और कल्प् का अर्थ है सामर्थ्य। मन की उस कल्पना का नाम संकल्प है, कि जिससे कार्य करने के लिए अच्छा सामर्थ्य प्राप्त हो। यह भाव संकल्प पदकी रचनाही से सूचित हो रहा है।

शब्द स्तोम महानिधि में संकल्प का लक्षण कहा है कि " अभीष्ट सिद्धये इदमित्थमेव कार्यमित्येवंरूपे मनसो व्यापारभेदे " अर्थात् " इष्ट वस्तु की सिद्धि के लिए यह इस प्रकार ही करना चाहिए, इस प्रकार का जो व्यापार विशेष है उसे संकल्प कहते है वही कोष फिर आगे चलकर लिखता है " कर्मसाधनायाभिलाषवाक्ये " अर्थात् " कर्मकी सिद्धि के लिये दृढ निश्चय का द्योतक जो एक प्रकार का मानस - कथन है उसे संकल्प कहते है। "

इंद्रिय और अर्थ का संयोग होने से कल्पना उत्पन्न होती है। कल्पना से अनुभव अर्थात् ज्ञान होता है।

अनुभव+अनुकूलता=इच्छा अर्थात् वह कल्पना जिसका ज्ञान हो चुका है संचित संस्कारों के अनुकूल होने पर इच्छारूपमें परिणित हो जाती हैं। इच्छा मनकी दृढता पाकर संकल्प बन जाती हैं। अर्थात् ज्ञान, अनुकूलता और दृढतासे संयुक्त कल्पना का नाम संकल्प है। जिस क्रमसे संकल्प मनमें उदय होता है, वह क्रम संकल्पकी उक्त परिभाषा सूचित कर रहा है।

ज्ञान प्रत्येक मनुष्यको कार्य्य आरम्भ करने के प्रथम इस बात को भलीभांति समझ लेना चाहिए कि उसे क्या करना चाहिए? जिस कार्य्य को प्रारंभ करना है और जिस विधिसे वह कार्य किया जायगा, ये दोनों ही उसे इतनी अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए कि जिस समय उनकी आवश्यक्ता पड़े ठीक उसी समय उसे स्मरण हो जाए।

आप संकल्प तथा अन्यान्य शक्तियां चाहे कितनी भी उन्नत करलें बरन् यदि उद्देश और उसकी विधि नहीं जानते तो इन शक्तियों से कुछ लाभ नहीं पहुच सक्ता और शनैः शनैः आपकी संकल्प-शक्ति क्षीण होने लगेगी। जिस प्रकार विना निशाने के निक्षिप्त किया हुआ तीर अपने तरकस को खाली करना है; परिश्रम करते हुए भी इष्टफल नहीं प्राप्त करा सक्ता ठीक इसी प्रकार विना उद्देश के संकल्प शक्ति का उपयोग वृथा है।

यदि कोइ मनुष्य बडा तेज चलनेवाला है और बहुत दूर तक चल सक्ता है, परन्तु वह चलने के पहिले यह न समझले कि मुझे चलना कहां है और किस मार्ग से मुझे चलना है, चलने के लिए मेरा उद्देश क्या है, और इन बातों के उपर बिना विचार किए ही वह चलना प्रारंभ कर दें तो बतलाइए क्या उसका चलना सार्थक और निष्कंटक होगा। सर्वदा असंभव है।

जितना आपको उद्देश का ज्ञान भली भांति होगा उतनी ही आपकी मानसिक शक्तियां आपको सहायता देंगी। विना किसी विषय के निर्धारित किए ध्यान स्थिर नहीं रहता और विना ध्यान के मानसिक शक्तियों का यथार्थ उपयोग नहीं हो सक्ता।

प्रत्येक जहाज का संचालक अपने जहाज को चलाने के प्रथम अपना उद्देश और मार्ग दोनों निश्चित कर लेता है। यदि वह उस मार्ग का चित्र अपने सन्मुख न रखेगा तो निःसंदेह उसका जहाज न किसी स्थान को ही पहुंचेगा बरन समुद्रकी लहरों द्वारा बहाया जाकर किसी चट्टान इत्यादिक से टकरा कर नष्ट भ्रष्ट हो जाएगा। ठीक इसी प्रकार मनुष्य इस संसार समुद्र में बहता है। जो मनुष्य अपने उद्देश और उसकी प्राप्ति के मार्ग का ज्ञान नहीं प्राप्त करते वे परिस्थिति रुपी तरङ्गों द्वारा बहाए जाकर आपत्तियोंसे टकराते हुए अकाल में ही प्राण विसर्जन कर देते है।

यदि किसी मनुष्य के पास विपुल द्रव्य है और वह बहुत से रुपयों को साथ में रखकर कुछ लेने के लिये निकले बरन यदि वह यह नहीं जाने कि मैं क्या खरीदने जा रहा हूं और कहांसे खरीदूंगा। इस प्रकार के मनुष्य धनी होने पर भी कुछ भी नहीं खरीद सकते। बरन् अमूल्य समय का नाश करते हुए अपना उपहास कराते फिरते हैं। जो मनुष्य अपने उद्देश को निश्चित कर लेते हैं वे शीघ्र ही आकर वांछित वस्तु लेकर उसका उपभोग भी करलेते है।

परमपिता परमेश्वर ने हम सब को पुरुषार्थरूपी द्रव्य दिया है। उद्देश को निश्चितकरें और जो चाहें सो लें।

मानवी-जीवन कितना कठिन है, उसमें कितनी कितनी आपत्तियां है और कितना क्लेश है, प्रत्येकको इस बातका पूर्ण अनुभव है। किसी एकका जीवन नहीं बरन् सम्राट से रंक तक का जीवन निष्कंटक नहीं है। जो चिन्ताएं एक दरिद्री मनुष्य को है यद्यपि उन चिन्ताओं से धनी मुक्त रहते हैं बरन् वेभी दूसरी चिन्ताओं से सताए जाते है। इस कारण भावी जीवन को उन्नत बनाने के लिए मनुष्य को अपना उद्देश और विधि दोनों निश्चित कर लेनी चाहिए।

प्रारंभ में यद्यपि आपको विधि निश्चित करने में बडी कठिनता पडेगी बरन ज्यों ज्यों आप कर्म में आगे बढते जाएंगे त्यों त्यों आपका अनुभव बढता जाएगा और सरल उपाय सूझने लगेंगे।

पाठ २

अनुकूलता।

इसी परिच्छेद के पाठ एक में बताया जा चुका है कि इच्छा से संकल्प उत्पन्न होता है। इच्छा सदैव अनुकूल पदार्थों से होती है। जो पदार्थ हमसे प्रतिकूल है उसकी प्राप्ति में कभी इच्छा उत्पन्न नहीं होती। संकल्प शक्ति को उन्नत करने के लिए पहिले इच्छा को उन्नत करना चाहिए। इच्छा की शक्ति पाकर ही संकल्प जीवित रहता है।

यह बात हमारे दैनिक अनुभव की है कि जब हम कोई कार्य्य करना चाहते हैं और उस कार्य्य को करने के लिए जब हमारे मन में प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाती है, उस समय माता पिता, तथा अन्य लोगों के रोकने परभी हम उस कार्य्य के करने के लिए अनेकानेक युक्तियां निकाल लेते हैं और उस कार्य्य को समाप्त करलेते है। जब हम किसी को नहीं चाहते उस समय उस कार्य्य में अनेकानेक विघ्न बतलाते हैं और सरल कार्य को भी अगम कहते हैं।

इच्छा, संकल्प का प्राण है। जिस संकल्प में जितनी इच्छा की शक्ति उन्नत रहती है उतनी ही शक्ति आपत्ति, कष्ट, त्याग और तपके सहन करने के लिये संकल्प में उन्नत होती है। अर्थात् इच्छा, संकल्प में त्याग, तप और आपत्तियों के सहन करने की शक्ति उत्पन्न करती है।।

इतिहास इस बातका साक्षी है। वीर सावरकर जिस समय इंग्लैंड में राजद्रोह के मामले में पकडा जा चुका था और हिन्दुस्थान को वापिस आते समय जब फ्रेंच सीमा में जहाज चल रहाथा उस समय वह वीर यह सोचने लगा कि यदि इस समय मेरे प्राण न बचालिए गये तो अब भावी जीवन में देशभक्ति की कोई आशा नहीं है। इसी इच्छा से उत्तेजित होकर वह समुद्र में गिर पडा और प्राण बचाने के लिये तैर कर फ्रेंच सीमामें सामने एक पहाड था उस पर चढ गया। अपने पीछे अंग्रेज सिपाहियों को आते देख फिर वहां से भी भागा। एक अंग्रेजी शिक्षासे पले हुये नव युवक के अंदर कि जहां विलासिता

और स्वास्थ्य हीनता की चरम सीमा तक पहुंचाने के लिये आवश्यकता से भी कहीं अधिक साधन रहते हैं, इस प्रकार का अदम्य उत्साह और इतनी शक्ति का उत्पन्न होना क्या सिद्ध करता है। यदि उस मनुष्य, नहीं देव में देशभक्ति की इतनी उत्कट इच्छा नहीं होती तो क्या उसमें इतनी शक्ति उस समय में आसक्ती थी, कदापि नहीं।

स्वराज्य प्राप्ति की इच्छा प्रज्वलित होने के कारण ही महात्मा गांधी ने असह्य कष्ट सहे, लाठियों की मार सही और जेलों की यात्रा सुगम समझी। यदि उनमें इतनी इच्छा नहीं उत्पन्न होती तो निःसन्देह वह महात्मा इतने कष्ट नहीं सहन कर सक्ता था।

इच्छा की शक्ति अर्थात् मनुष्य की आवश्यक्ता बढने के साथ साथ उसमें दूसरी शक्तियां भी बढती है, इसको सिद्ध करने के लिये असंख्य उदाहरण दिये जा सक्ते हैं बरन प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में इस सिद्धांत का अनुभव कर सक्ता है और यही अभीष्ट है।

इच्छा शीघ्रगामी है अर्थात् थोडी देर में परिवर्तित हो जाती है। अभी हम एक वस्तु को चाहते है, थोडीसी देर के उपरांत ही हम उसके बलिदान करने मे संकोच नहीं करते। एक बालक मिठाई को देखकर उसे खाने की इच्छा प्रगट करता है और यदि उसी समय उसे उसके मित्रों में मिला दिया जाए तो खेलने की इच्छा प्रगट करता है। प्रत्येक मनुष्य इस सिद्धांत का उपयोग करता दिखाई देता है बरन् इसे एक नियम के रूपमें समझने वाले बहुत थोडे हैं। इसका नियम यह है कि जिस समय जो वस्तु हमें अपनी आवश्यक्ताओं को पूर्ण करने वाली प्रतीत हो, कोई ग्रसित कष्ट या भावी कष्ट को निवारण करने वाली प्रतीत हो, सदैव उसी कार्य्य मे हमारी इच्छाएं परिवर्तित हो जाती है। अभी जिस वस्तु की आप इच्छा कर रहे हैं, उस साधन को जो कि उस वस्तु की इच्छा उत्पन्न कर रहा है बदल दीजिए और दूसरी वस्तु जो अनुकूल हो सामने रख दीजिए। पहिले की इच्छा शांत हो जाएगी और नई वस्तु की इच्छा उत्पन्न हो जाएगी।

एक शराबी मनुष्य की स्त्री अपने पति को जब कभी उसे शराब पीये हुए देख लेती थी, खूब मारा करती थी। एक समय उस स्त्रीने उसे बहुत मारा और यह कबूल करवा लिया कि अब वह भविष्य में कभी शराब नहीं पीयेगा। दूसरे दिन उस स्त्री को घर के लिये कुछ सामग्री मंगवानी थी। उसे यह विश्वास हो गया था कि अब उसका पति कभी शराब नहीं पीयेगा, क्योंकि उसने रात्रि को कसम खाली थी। उसने यह सोचकर अपने पति को बाजार जानेके लिये रुपये दे दिये और कहा कि शराब मत पीना। उस पुरुष ने भी इसबात को स्वीकार कर लिया। रास्ते में वह बडी जल्दी जल्दी चलने लगा और शीघ्र सामान देकर अपनी स्त्री को प्रसन्न करने का विचार करने लगा। आगे जाकर उसने अपने एक मित्र को शराब पीये हुये आता हुआ देखा। यह देखकर उसके मुंहमें पानी छूटने लगा और उसने कहा कि यद्यपि कल मैं शराब छोडने का निश्चय कर चुका हूं बरन् केवल आज तो थोडी पीलूं, भविष्य में न पीयूंगा। इस प्रकार विचार करता जा रहा था कि रास्तेमें उसे एक दुकान दिखी। वह उस दुकान पर गया और सामान ही खरीदनेका निश्चय किया; क्योंकि उसे विचार हुआ कि अगरमें शराब पीलूंगा तो मेरी स्त्री मुझे बहुत पीटेगी बरन् उस दुकान पर उसे सामान नहीं मिला और फिर वह आगे चला। इस समयभी उसके विचार शराबके विरोध में और सामग्री के पक्ष में

था। आगे चलकर उसे एक कलाली नजर आई कि जहां उसके बहुतसे पुराने मित्र प्याला उडा रहे थे। इस के मनमें फिर शराबके पक्ष में विचार उत्पन्न होने लगे। स्त्रीके भयसे उसने पीछे देखा बरन् उसकी स्त्री उसे जब नहीं दिखी तब उसने बहुतसे विचार करने के उपरांत यह कहा कि मरी पीठ शराबका विरोध कराती है और मेरा पेट शराबकी आज्ञा देता है।

अर्थात् भय शराब से रोकता है और आनंद शराब मांगता है। अंतमें उसने कहा कि क्या मेरा पेट मेरी पीठ से अधिक प्यारा नहीं है और ऐसा कह कर वह दुकान के अंदर चला गया। यदि वह दुकान में जाते समय अपनी स्त्री को हाथ में एक दंड लिए हुए आती देख लेता तो निःसंदेह वह पेट के बदले अपनी पीठको श्रेयस्कर समझता एक ही पुरुष को एकही दिन में स्त्रीको देखकर शराब के विरोध में विचार होता है जब शराबी को देखता है तो उसे त्यागके बदले ग्रहण की इच्छा उत्पन्न होती है, दुकानको देखकर सामग्री की इच्छा होती है और फिर शराब देखकर पीने की इच्छा होती है। आशय केवल यह है कि विषयों के बदलने से मनुष्य की इच्छाओंमें किस प्रकार परिवर्तन होता है और किस प्रकार इच्छा मन में पैदा होकर. विजय का मार्ग निष्कंटक कर लेती है। मार्ग में विघ्न आते हैं, भय उत्पन्न होता है, कष्ट और आपत्तियां आती है बरन् इच्छा सभी को नष्ट कर देती है।

इच्छाके अन्दर एक और गुण है और वह यह है कि इच्छा इच्छित पदार्थोंका आकर्षण करती है। इच्छा और इच्छित पदार्थ दोनों ही आपस मे एक दूसरे को आकर्षण करते हैं। (प्रश्न) यह कहना कि इच्छा और इच्छित पदार्थ आपस में एक दूसरे को आकर्षण करते हैं, मिथ्या है और प्रत्यक्ष अनुभव के विरुद्ध है, क्या कि यदि यह सिद्धांत सत्य होता तो हम राजा और धनी बनना चाहते हैं बरन् हम तो अभीतक निर्धन है। आकर्षण क्रिया तो चुंबक में है कि जो लोहे को तुरंत अपनी ओर खींच लेता है लेकिन इच्छा में हमें ऐसी कोई शक्ति नहीं दिखाई देती। परंतु पुरुषार्थ से सब कुछ प्राप्त होता है। (उत्तर) आपने कहा कि "चुंबक लोहे को खींच लेता है"। आपके कथनानुसार सिद्ध होता है कि लोहा और चुंबक दोनों ही पहिले वर्तमान और पृथक पृथक थे और आकर्षण शक्ति के होते हुए भी प्रयत्न के न होने के कारण अलग अलग रहे हम पुरुषार्थ के सिद्धांत का खंडन नहीं करते. जिस प्रकार लोहा और चुंबक दोनों में एक दूसरे की आकर्षण शक्ति होते हुए भी विना प्रयत्न के एक दूसरे से पृथक रहते हैं। ठीक इसी प्रकार ही विना पुरुषार्थ के इच्छा और इच्छित पदार्थ दोनों में आकर्षण शक्ति के हुये भी पृथक पृथक रहते है।

मन में जितनी इच्छा उत्कट होगी उतना ही विजयका मार्ग निष्कंटक होगा महात्मा बुद्ध के मन में धर्म की भावना जागृत हो चुकी थी और इसी कारण प्रत्येक रुकावट परास्त हुई और अंत में उसकी इच्छा फलीभूत हुई। परिस्थिति मनुष्यके अनुकूल नहीं उत्पन्न होती बरन मनुष्य परिस्थिति को अपने अनुकूल बना सकता है।

जिस प्रकार एक क्षुधा से पीडित व्यक्ति रमणीय उद्यान में फिरना नहीं चाहता बरन् अपनी क्षुधाको शांत करने की उत्कट इच्छा रखता है, विना अपनी इच्छा की पूर्ति हुये विश्राम लेनेको तैयार नहीं, जिस प्रकार मृगतृष्णा की आशा में थाका हुआ मृग केवल जल के और कुछ नहीं चाहता, जिस प्रकार विरहसे वियोगित स्त्री अपने प्रियतमकोही चाहती है।

अन्य कुछ भी नहीं, ठीक इतनी ही तीव्र इच्छा मनुष्य को अपने अंदर उत्पन्न करना चाहिए। इस प्रकार की इच्छा उत्पन्न करने पर मनुष्य प्रत्येक वस्तु प्राप्त कर सक्ता है। भगवान् दयानंद, वीर नेपोलियन इत्यादि महान् आत्माओं के जीवनचरित्र देखने से मालूम होता है कि इन्होंने जो कुछ भी किया है उसके लिये इनके अंदर प्रथम इतनी ही उत्कट इच्छा उत्पन्न हो चुकी थी; और इतनी इच्छा के उत्पन्न होने के कारण ही इन महापुरुषों ने कठिन से कठिन कार्य्य से मुंह नहीं मोडा अपि तु विजय प्राप्त की।

तीव्र इच्छा और उसके विषय में इतनी आकर्षण शक्ति है कि चित्त विना विचार के प्रयत्न करता है और फल प्राप्त हो जाता है। साधारण जन इस क्रिया की गतिको न समझने के कारण अनेकानेक काल्पनिक बातें अपनी इच्छा की पूर्ति में साधन समझते है। कोई कहता है कि यह वस्तु जो मुझे प्राप्त हुइ है और जिसकी मैं बहुत इच्छा करता था, अकस्मात् मिली है, कोई भाग्य को इसकी प्राप्ति का कारण मानता है, कोई गुप्त शक्तियों का मन गढंत विचार कर कहता है कि किसी देव, भूत, पिशाच, चुडेल या किसी और अन्य शक्ति की कृपा का परिणाम है।

इच्छा—शक्ति और उसके नियमों का विवेचन इतना विस्तृत है कि इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सक्ता है, इस कारण इसका विचार "इच्छा-शक्ति" नामकी अन्य पुस्तक में किया गया है। इच्छुक महोदय इसका पूर्ण विवरण उसमें देख लें। इस पाठ में केवल इतना बतलाया गया है कि संकल्प को अपना कार्य्य पूर्ण करने के लिये दृढेच्छा की अत्यंत आवश्यक्ता है।

पाठ ३

दृढता।

हम अथर्ववेद का एक मंत्र प्रथम परिच्छेद के द्वितीय पाठमें उद्धृत कर आये है और उसमें लिखा है कि हमारी संकल्प-शक्ति केवली हो अर्थात् अकेली हो, एक हो। हम यह भली भांति जानते है कि एक नदी जो कि एक ही मार्ग से प्रवाहित हो रही हो, उसमें अधिक शक्ति रहती है। यदि वही नदी अनेक मार्गों में प्रवाहित कर दी जाय तो निःसंदेह उसका प्रत्येक मार्ग कमजोर हो जायगा। ठीक इसी प्रकार संकल्प-शक्ति के लिए वेद कहता है कि एक समयमें संकल्प- शक्ति को एक ओर ही प्रवाहित करो।

एक कार्य्य को प्रारंभ करना, उसके पूर्ण करनेके लिये अपनी सब शक्तियों को लगा देना, विजय प्राप्त होने तक, आपत्तियों का कुछ भी विचार न कर, उत्साह से उस कार्य्य को करने का नाम दृढता है। दृढता के लिये वेदने कहा है कि वह दृढता केवली हो। एक समय में अनेक कामों को हाथ में ले लेना असफलता का कारण है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को किसी काम में दृढता रखने के प्रथम उसे केवली कर लेना चाहिए।

केवली का प्रयत्न तुलनात्मक विचार कहाता है। मन में कई इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। प्रत्येक इच्छा अपने साथ न्यूनाधिक अंश में अनुकूल एवं सुखद भावों को लिये हुये होती हैं। उनमें से बहुतेक एक दूसरे के प्रतिकूल होती हैं। भिन्न भिन्न समय में अनेक कारणों से इच्छाओं की प्रधानता में भिन्नता आजाती है. जबतक जिस इच्छा की प्रधानता रहती है तबतक उसके अनुकूल कार्य्यों में प्रवृत्ति रहती है; परंतु किसी कारण से जब प्रधानता नष्ट हो जाती है तो प्रवृत्ती के स्थान पर निवृत्ति हो जाती है। इसका

रण फल प्राप्त होने के प्रथम ही हम कार्य्य छोड देते है ।

एक पंडित जो कि भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक थे, एक समय नाटक देखने के लिये गये। नाटक अति उत्तम रीति से खेला गया था और सबलोग मुग्ध हो नाटक खेलनेवालों की ओर विशेषतया उसके लेखक की मुक्त कंठसे प्रशंसा करते थे। पंडितजी उस प्रशंसा को सुनकर मन ही मन कहने लगे कि यदि मैं अपनी योग्यता का उपयोग यदि किसी नाटक के लिखने में करता तो निःसंदेह मेरी भी प्रशंसा लोग करते और मुझे बडी सन्मान की दृष्टि से देखते। उस प्रशंसा को सुनकर उनके हृदय में अदम्य उत्साह उत्पन्न हो आया और उन्होंने वहीं एक नाटक लिखने की प्रतिज्ञा की। जब वहां से वे लौटकर घर आये तब रातभर उन्होंने नाटक को किस प्रकार लिखने, नाट्यरसों के विचार और कौनसा नाटक लिखने इत्यादि के विचार में रात्रि व्यतीत की और प्रातःकाल उठते ही उन्होंने नाटक का प्रथमांक लिखना प्रारंभ कर दिया। दोचार दिनमें उनका यह उत्साह शिथिल होगया तथापि उन्होंने लिखना बन्द नहीं किया, वे बराबर लिखते रहे। कुछ दिनोंके पश्चात् जब कि उनका प्रथमांक भी समाप्त न हो पाया था कि उनको एक सभा में जाना पडा। वहां कई ओजस्वी भाषा में व्याख्यान दाता आये थे। सभाका उद्देश था "विधवा-विवाह प्रचार।" करुणा जनक विधवाओं के विषयमें प्रभावशाली व्याख्यान सुनकर पंडित जी के हृदयमें दया उपज आई और पंडित महोदय ने विधवाओं का कष्ट निवृत करने का निश्चय किया। उस विषय पर अनेकानेक लेख लिखने, पुस्तक प्रकाशित करने इत्यादि कार्य्य प्रारंभ किए कि जिनसे प्रचार का काम भली भांति हो सके। पंडित महोदय ने अब अपना समय विधवा विवाह प्रचार के कार्य्यमें लगाना प्रारंभ किया।

कुछ दिनों के पश्चात् पंडित महोदय ने एक सूचना पढी और उसमें शुद्धि-महासभा के अधिवेशन का समाचार सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। शहर में नई नई तैय्यारीयां हो रही थीं। जहां देखो वहां महासभा में चलने के विचार सुनाई देते थे। विद्वान लोग व्याख्यान और पुस्तकों की रचना का प्रबंध कर रहे थे। हमारे पंडितजी भी मन में नई नई पुस्तकों की रचना का विचार करने लगे.

उक्त पंडितजी के सदृश कई मनुष्य इस संसार में है जो कि वायु की गति सूचित करने वाले यंत्र के समना अपने विचारों में परिवर्तन किया करते है.

निःसंदेह पंडितजीने पुरुषार्थ किया बरन सब निष्फल हुआ-सिवाय समय के ह्रास और शक्ति की दुर्गति के परिणाम कुछ भी नहीं हुआ। पंडित जी ने अपने जीवन के लिये कोई प्रतिभा निश्चित न की थी और न कोई उनका निश्चित उद्देश ही अपने जीवन के लिये था और इसी कारण उनके विचारों में इतनी अदृढता रही.

हम प्रतिमा के विषय में तृतीय परिच्छेद में लिखेंगे और उसके प्रथम हम तुलनात्मक विचार और दृढता के विषयमें कुछ लिखना चाहते हैं।

मनुष्य जबतक तुलनात्मक विचार का आश्रय नहीं लेता तब तक सत्य और असत्य, भले और बूरे का निश्चय नहीं कर सक्ता। तुलनात्मक विचार से ही मनुष्य सरल और सत्य मार्ग का अनुसरण कर सक्ता है। तुलनात्मक विचार के विना दृढता नहीं हो सकी और यदि वह निश्चित भी कीगई तथापि अस्थिर रहजाती है।

आज एक मार्ग का अनुसरण किया है कल दूसरा मार्ग उससे सरल और अधिक आनन्दप्रद प्रतीत हुआ कि हमने उसे आज ही छोड दिया। इस कारण तुलनात्मक विचार का अभाव मन में ग्रहण और त्याग का एक व्यापार उत्पन्न कर देता है कि जिस कारण लाभ के बानिस्बत हानि पहुंचती और व्यापारी सदा नुक्सान में रहता है। इसलिये दृढता के प्रथम, विचारों की तुलना को प्रथम स्थान दीजिये।

तुलना दो या दो से अधिक पदार्थों या विचारों के होने पर हो सक्ती है। यावत् दो पदार्थों के किसी न किसी गुण की समानता नहीं होती तावत् तुलना नहीं की जा सक्ति।

तुलना मूलक विचार में मनुष्य को तर्क, बुद्धि एवं पूर्व अनुभव का उपयोग अवश्य करना चाहिये। तुलनात्मक विचार में औरों के विचार या व्यवहार को देख या सुनकर किसी निश्चय पर पहुंचना महा हानिकारक है।

तर्क का नाम सुनकर कई लोग घबरा उठते हैं। परंतु तर्क से बहुत सहायता मिलती है। किसी सिद्धांत की पुष्टि करना और पुष्ट किये हुए सिद्धांतपर दृढता और विश्वास रखवाना तर्क का ही कार्य्य है। जो व्यक्ति तर्क की प्रतिष्ठा को नहीं समझते और उसकी सहायता नहीं लेते वे अंधश्रद्धालु होते हैं और श्रद्धा के वास्तविक सिद्धांत को न समझकर उसका उपयोग कदापि नहीं कर सक्ते।

इस कारण तर्क का जहां उपयोग होता है वहां संकल्प-शक्ति की दृढता करने में वह तर्क मनमें स्मृति, अनुमान तथा अन्य शक्तियों को जागृत कर अपने सिद्धांत की पुष्टि में उपयोग कराता है। कभी कभी आपको बहुधा ऐसे विचार उत्पन्न होंगे कि जिससे आपके मनमें असमंजस के विचार उत्पन्न होवें और आप कहेंगे कि मैं यह काम करूं या नहीं करूं, करना तो चाहिये बरन् संभवतः इसके परिणाम में अनिच्छित पदार्थ की प्राप्ति हो जावे। जिन पदार्थों से मैं डरा करता हूं, उनकी प्राप्ति तो मुझे न हो जावे। केवल तर्क ही इस सबका यथावत् समाधान कर तुलनात्मक विचार की क्रिया पूर्ण कर सक्ता है।

एक कार्य्य को एक मनुष्य अभी अच्छा समझता है परंतु थोडी देर के उपरांत ही उसे बुरा कहने लगता है। इसका कारण यह है कि भिन्न भिन्न समयमें उसके बुराई और भलाई के पहिचानने के साधन भिन्न भिन्न थे। पहिले साधन जिनसे भले और बुरे की पहिचान की जाती है और जिन्हें हम प्रतिमा कहते हैं निश्चित किये जाते है और उनसे तौल कर मनुष्य अच्छे और बुरे का निर्णय करता है। विना प्रतिमा के तुलनात्मक विचार नहीं हो सक्ता अतएव इसका विशेष विवरण हम अगले परिच्छेदमें करेंगे।

यज्ञेषु पशुहिंसानिषेधः ।

अयि प्रिय महाशय ! नमस्ते ॥

वेदेतिहाससूत्रपुराणादिग्रन्थविचारे पूर्वापरविमर्शपूर्वकं क्रियमाणे मद्यमांसोपयोग आर्षयज्ञेषु नास्ति इति निर्धारयितुं शक्यते॥ यद्यपि–

"मा नो मित्रो वरुण"

(ऋ०१। १६२, १६३ सू०)

इत्यादि मन्त्रेषु पशुवधादिलिंगानि दृश्यन्ते, तथापि–

"यजमानस्य पशून्पाहि। अविं मा हिंसी:।

अनागास्त्वं नः। मा गामनागामदितिं वधिष्ट।"

इत्यादिषु यज्ञस्याहिंसार्थकाध्वरविशेषणदानात्–

"सुरा मत्स्याः पशोर्मांसं"

इत्यादिरूपेण महाभारतमनुस्मृत्यादिषु धूर्तप्रकल्पितत्वादिकारणोपन्यासाच्च सावकाशा वधादिलिंगा:मन्त्रा निरवकाशनिषेधपरमन्त्रसमानार्थका व्याख्यातव्याहि। वेदेषु परस्पर विरोधस्य केनाप्याचार्येण सर्वथाऽनभ्युपगतत्वात्। किंच अनागसां मूकप्राणिनां हिंसायाः प्रेक्षावतां - वृत्तिबहिर्भूतत्वात् सुराजनितदोषस्य सर्वजनविदितत्वाच्च सुरामांसराहिता एव यज्ञा भवन्तीति सुदृढं वयं विश्वसिमः ॥

इति भवन्मित्रं

अनन्तोपाध्यायः ॥

"वैदिक धर्म" के पाठकोंको इस संक्षिप्त संस्कृत लेखके लेखक श्री० पं० अनन्तोपाध्यायजीका परिचय कराते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता होती है। वे सेंट अलॉशिअस कालेज, मंगलोर में संस्कृतके प्रोफेसर हैं। सारे दक्षिण कर्नाटक प्रांतमें वे शायद एक ही महानुभाव हैं जिन्होंने वैदिक स्वाध्याय में अपने जीवनको लगाया हुआ है। उनकी संमतिको दक्षिण भारतके उदार विचार युक्त सब धुरंधर वैदिक विद्वानों के विचारोंका प्रतिनिधि समझा जा सकता है। उनके लेख का तात्पर्य यह है कि--

"वैदिक यज्ञका तात्पर्य निर्मांस और सुराहीन यज्ञोंमें ही है।"

पाठक इस लेखको महत्त्वकी दृष्टीसे देखें।"

(संपादकीय)

स्वाध्याय के ग्रंथ

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध। मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन। १)

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। सर्वमेध। " एक ईश्वरकी उपासना। " मू. ॥)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण। " सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।" मू. ॥)

[२] देवता-परिचय ग्रंथ माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥=)

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=)

(३) ३३ देवताओंका विचार। मू. ≡)

(४) देवताविचार। मू. ≡)

(५) वैदिक अग्नि विद्या। मू. १॥)

[३] योग-साधन-माला।

(१) संध्योपासना। मू. १॥)

(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥)

(३) वैदिक-प्राण-विद्या। मू. १)

(४) ब्रह्मचर्य। मू. १।

(५) योग साधन की तैयारी। मू. १)

(६) योग के आसन मू. २)

(७) सूर्यभेदन व्यायाम। मू. ।=)

[४] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा। प्रथमभाग -)

(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा। द्वितीयभाग =)

(३) वैदिक पाठ माला। प्रथम पुस्तक ≡)

[५] स्वयं शिक्षक माला।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक। प्रथमभाग। १॥)

(२) वेदका स्वयं शिक्षक। द्वितीय भाग १॥)

[६] आगम-निबंध-माला

(१) वैदिक राज्य पद्धति। मू. ।-)

(२) मानवी आयुष्य। मू. ।)

(३) वैदिक सभ्यता। मू. ॥)

(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र। मू. ।)

(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू. ॥)

(६) वैदिक सर्प-विद्या। मू. ॥)

(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू. ॥)

(८) वेदमें चर्खा। मू. ॥

(९) शिव संकल्पका विजय। ॥)

(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता। मू. ॥)

(११) तर्कसे वेदका अर्थ। मू. ॥)

(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र। मू. ≡)

(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न। मू. =)

(१४) वेदमें लोहेके कारखाने। मू. ।-)

(१५) वेदमें कृषिविद्या। मू. ≡)

(१६) वैदिक जलविद्या। मू. =)

(१७) आत्मशक्ति का विकास। मू. ।-)

[७] उपनिषद् ग्रंथ माला।

(१) ईश उपनिषद् की व्याख्या। ॥=)

(२) केन उपनिषद् ,, ,, मू. १।)

[८] ब्राह्मण बोध माला।

(१) शतपथ बोधामृत। मू. ।)

मंत्री-स्वाध्याय-मंडल;
औंध (जि. सातारा)

आ

पशुयागशास्त्रार्थ ।

इस समय तक पशुयाग शास्त्रार्थके विषयमें जो सहायता प्राप्त हुई है उसका ब्यौरा नीचे दिया है।

यहां इस संबंध में ग्रंथनिर्माण का कार्य हुआ है और छपनेका कार्य पूर्ण होते ही वह ग्रंथ ग्राहकोंके पास भेजा जायगा। शीघ्रसे शीघ्र छपनेका कार्य करनेका विचार है, तथापि दो मास तो अवश्य लगेंगे। बहुधा यह ग्रंथ नवंबर के अंतमें छपकर तथा जिल्द बनकर तैयार हो जायगा और दिसंबरमें ग्राहकोंको प्राप्तहोगा।

इस ग्रंथ में वेद और ब्राह्मणादि अन्य ग्रंथोंके प्रायः संपूर्ण विशेष वचनों का विचार हुआ है तथा कई अन्यान्य विषय जोकि यज्ञ से संबंधित हैं उन सबका पूर्ण विचार हुआ है।

यज्ञविषय के समझानेके लिये इस पुस्तकमें कई चित्र दिये हैं जिससे यज्ञविषयका तत्त्व पाठकोंके मनमें सुगमतासे उतर सकता है और वैदिक यज्ञका महत्त्व भी ज्ञात हो सकता है।

कई लोग इस समय इस पुस्तक की मांग कर रहे हैं परंतु यह ग्रंथ कितना बडा होगा और छपाईपर व्यय कितना होगा इसका पता इस समय नहीं हुआ है। अंदाजा व्यय हमने दो हजार किया हैं, परंतु चित्रादि निर्माण पर भी व्यय होनाही है। जिल्द भी अच्छी बनेगी। इसलिये इस समय मूल्य निश्चित नहीं कह सकते। चूंकि इसके व्यय का बहुतसा भाग पाठकों की ओर से आया है, इस कारण इस पुस्तक का मूल्य जितना कम रखा जा सकता है उतना कम रखेंगे और इस कारण सभी ग्राहकोंको यह पुस्तक लेना सुगम हो जायगा।

शास्त्रार्थ की तिथि निश्चयके विषयमें कई पत्र प्रतिदिन आरहे हैं। उनको कहना इतनाही है कि जो तिथिनिश्चित होगी उसकी सूचना हरएक को अवश्य दी जायगी और वृत्तपत्र में भी सूचना जरूर दीजायगी। इस विषयमें हमने अपनी ओर से बहुत प्रयत्न किया परंतु इस समय तक कुछ निश्चय नहीं होने पाया।

इसी सप्ताहमें यज्ञकर्ता श्री० पं० धुंडिराज दीक्षित आहिताग्नि यहां औंध में पधारे थे और उनका मुकाम यहां ४।५ दिन था। इतने समय में उन्होंने स्वाध्याय मंडलमें दो तीन बार दर्शन दिया था और स्वाध्याय मंडलके संचालक भी उनको मिलने के लिये उनके स्थानपर गये थे। इतने अवकाशमें शास्त्रार्थके विषयमें कई बार बातचीत हुई, परंतु तिथिनिश्चय नहीं हुआ। श्री० पं० दीक्षित जी चाहते हैं कि शास्त्रार्थ संपूर्ण महाराष्ट्रीय ब्राह्मण वृंदकी ओर से किया जाय न कि अकेले पं० दीक्षित जी कि ओर से। हम इस विषय में पूर्ण सहमत हैं। और यदि ऐसा हुआ तो इस शास्त्रार्थके अंतिमनिश्चय का संबंध संपूर्ण महाराष्ट्रीय ब्राह्मण संघ तक पहुंच जायगा। हमारी संमतिमें इस से अधिक अच्छा कोई विचार नहीं है। आशा है कि हम अब शीघ्रही कुछ नतीजे तक पहुंच जायंगे। अगले मासमें इस विषय में हम अधिक लिखनेकी आशा करते है।

अब इस तारीख तक जो सहायता आगई है उसका ब्यौरा यह है।

म. जगनलाल	५)
म. मोतीभाई लखाभाई	१०)
म. मणिलाल मोगीलाल.	५)
म. भूलाशंकर जगजीवन.	५)
म. अंबालाल प्रभुदास.	५)
म. बापुलाल के. पटेल.	३)
म. नानालाल वर्मा.	२)
श्री. मंत्री आर्य समाज, मंडाले.	१४॥=)
श्री. विद्यावती जी.	३)
डा. बेगरजी.	५)
श्री. तापीबाई शिवगीरजी.	२)
टी. रामकृष्ण.	२)
श्री. मंत्री आर्य समाज टिमरपुर देहली.	१०)
गुप्तदान	२५)
ठा. सवाई सिंह	५)
पं. सूरज नारायण	२०)
कुं. रघुपति सिंह	१)
श्री. मंगलानन्द जी	१)
श्री. नरदेव शर्मा	१)
म. महताब	१)
डा. नाहर सिंह	१)
ठा. मदन सिंह	१)
सेठ बालचन्द	१)
" सीताराम	१)
" सेठ मनसुखलाल	१)
पं नाथूलाल	१)
पं. घासीलाल	१)
सेठ नाथूलाल किशनलाल	१)
सेठ कस्तूरचन्द	१)
सेठ विनोदीराम	२)
सेठ कुंवरलाल	१)
" प्यारचन्द	१)
पं. विश्वनाथ	१)
सेठ किशनलाल	१)
गुप्तदान	१)
श्री. नारायण जानकीदास	१)
सेठ हरनारायणजी	२)
" नारायण मोतीलाल.	१)
" इन्दरमलजी	१)
" पूसारामजी	१)
पं. विक्रमादित्य	५)
पं. हरिशरणजी	५)
पं. ज्ञानचन्द्र	१)
पं भगवानदास	३)
पं. माताप्रसाद	१)
पं. सत्यदेव	१)
पं. ओंप्रकाश	१)
पं. नोबतराय	१)
म. खुशहाल	=)
पं. ईश्वरचन्द्र	१)
ठा. आर्यन	१)
श्री. गुरुजी रामजी दयाल	१)
म. मक्खन जी	॥)
म. मोहन	।)
म. हरप्रसाद	॥)
म. भूदेव जी	॥)
म. लाला	॥)
म. माढी	।)
म. बुध्दुराम जी	=)
म. कल्लू	।)
म. जीवन	।)
म. उमराव	॥)
म मंगत.	=)
म. कल्लू	=)
" देवीराम.	॥)
" सीनईया	=)

म. लक्ष्मण	।)	म. कुडवाजा	॥)
म. राधेलाल	॥)	म. हरिवंशजी	।॥)
म. नत्थू	१)	योग	१७४।
म. सुखानन्द	≈)	पूर्व प्रकाशित	११३०॥≈
म. दुर्गादास	॥)	सर्व योग	१३०४॥≈

क्षात्र तेज।

मैं अकसर यह सोचा करता हूं कि किसी जातिने किसी खास महापुरुष की यादगार में त्यवहार क्यों बनाये हैं, तीर्थ यात्रा का अनुष्ठान क्यों किया है। हिन्दुओं ने श्रीराम और श्रीकृष्ण दो महापुरुषों को इतना प्यारा क्यों बना रक्खा है उनके नाम हमारे जातीय रत्नों में गिने जाते हैं। इन यवहारों का आरम्भ बहुत अर्से से है, इस लिए पता नहीं चलता कि पहले पहले यह किस प्रकार जारी हुये थे। लेकिन खुद समझने की बात है कि इन महापुरुषों में कोई खास गुण थे, और उन्होंने जाति और देश के लिए बहुत बडी बडी खिदमतें की हैं। बरन् लाखों और करोडों आदमी कभी उनकी इतनी इज्जत न करते। श्रीकृष्णचन्द्र का समय तरह तरह के रंगों से धनुष्य की तरह सुहावना दिखाई देता है क्यों कि उनका जीवन बहुत ही लाभदायक था। उन्होंने न सिर्फ दुनियवि, बल्कि जिस्मानी और दिमागी विकास के जरिये से अपने आप को एक ऊंचे दरजे तक पहुंचाया था, महाभारत और अन्य प्राचीन ग्रन्थों के पढने से यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य का धर्म है कि वह अपने शरीरको व्यायाम से, अपनी बुद्धि को स्वाध्याय से और अपनी आत्मा को सदाचार से सदा उन्नति पर चलाये, श्री कृष्ण जी की जीवनी से हमें यह भी शिक्षा मिलती है कि संसार में रह कर अपने आचरणों को ऐसे बनाना चाहिए जिन्हे मृत्युके बाद भी लोग सदा याद करते रहें, और उनपर चल कर अपना जीवन सार्थक बनायें। परन्तु शोक के साथ लिखना पडता है कि भारतवर्ष के कुछ कार्य प्रचारकों ने बाद में एक अधूरे और घातक और छोटे आदर्श का प्रचार करना आरम्भ कर दिया यानी यह शिक्षा देना आरम्भ कर दिया कि सिर्फ आत्मा की मुक्ति ही आवश्यक है। संसार के सारे काम धंदे छोड कर लोग अभ्यास और ध्यान से ही पूर्ण जीवन लाभ कर सकता है और सिर्फ अध्यात्म विद्या ही काफी है। इस हानिकारक विद्या की शिक्षा के कारण ही अब हम बहुत से अनपढ भाई बेअकल, बेजान, नंगे, दुबले और मूर्ख सन्यासियों और योगियों को आदर्श मानने लगे और महाभारत तथा रामायण के प्राचीन पूर्ण आदर्श को भूल गये हैं। अब हम समझते हैं कि सौंदर्य विद्या,

राजनीतिक ज्ञान और गृहस्थ धर्मके पालन किए विना भी कोई मनुष्य धर्मात्मा बन सकता है । अगर वह घर द्वार त्यागना तयकर ले और इधर उधर अनाथ सांड की तरह फिरता रहे । ऐसे बेलगाम और निकम्मे सांड और साधू भारतवर्ष में बहुत फिरते हैं । अधूरे संन्यास का आदर्श आज कल बहुत बढ़ा चढ़ा है और बिलकुल जाहिल व बेअकल आदमियों को परमहंस माना जाता है । परन्तु भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की जीवनी पर विचार करने से पता लगता है कि प्राचीन समयमें हिन्दु जातिमें यह झूठा आदर्श नहीं था ।

श्रीकृष्ण जी कुंवारे और अनपढ संन्यासी नहीं थे । बरन विद्वान, जानकार, सौंदर्यवान, कृपाशील, गृहस्थ थे । उन्हें हर कार्य का ज्ञान था । वह जंगम बनने की कोशिश नहीं करते थे । बल्कि बहुत से गुणों से अपने आपको भूषित करने का यत्न करते थे । वह दुनियाँ से अलग नहीं रहते थे, बाल्कि दुनियाँ के झगडों के अन्दर रह कर उपकारी होने की बात साबित करते थे, वह सिर्फ अहिंसा का नाम नहीं लेते थे, बल्कि शिशुपाल जैसे बदमाश को जान से मार देते थे । वह जीवन का आदर्श सेवा का साधन समझते थे । वे केवल अध्यात्म विद्या की बाल कि खाल नहीं निकाला करते थे । बरन संपूर्ण जीवों के प्रेमी थे, इस प्राचीन जीवन के आदर्श को अब फिर जीवित करने की आवश्यकता है इस लिये भारत के नवयुवकों को इस मार्ग पर चलना चाहिये ।

श्रीकृष्ण भगवान की शिक्षा के साथ साथ देश में क्षत्रधर्म का भाव भी नये सिरे से लोगों में पैदा करना चाहिये । यद्यपि हमारा राजनीतिक आन्दोलन कानून की हद के अन्दर रह कर शान्ति के साथ प्रचार करना और स्वराज्य माँगना है ; तो भी देशकी रक्षा के लिए तो हमें सिपाहियों और शूरवीरोंकी आवश्यकता है ही और हमेशा रहेगी । हिन्दुस्तान को अफगाणिस्तान से वा दूसरे दुश्मनों से हर समय भय रहता है इस लिए क्षत्रधर्म की जय बोलनी चाहिये । जिस धर्म में अस्त्र शस्त्र का मान नहीं है वह भारतधर्म दुर्बल हो गया है । वह शीघ्र ही दुःख और गुलामी के नर्क में गिर जायगा ।

आज कल सब विचारशील देशभक्त पूंछ रहे हैं कि हिन्दुओं में क्या दोष है और उनमें किस बात की कमी है । मेरी राय में हिन्दुओं की अधोगति का एक मात्र कारण यह है कि बहुत सदियों से यह लोग क्षात्रधर्म को भूल गये हैं । पहले तो क्षत्रियों ने सिर्फ अपने लिये क्षत्रिय धर्म का ठेका ले लिया । जिसका फल यह हुआ, शेष अन्य जातियां हथियारों का काम में लाना ही भूल गईं । सब व्यापारी किसान और मजदूर भेड बकरियों की मानिन्द बन गये । जब आक्रमणकारी मुसलमानों ने थोडे से क्षत्रियों पर आक्रमण करके उन्हें हरा दिया तो फिर सब जातियां उनके आधीन हो गईं । क्योंकि दूसरी जाति के लोग मैदान में मुकाबिला करना जानते ही नहीं थे और न क्षत्रिय धर्म से उनका कोई सम्बन्ध था । इसी तरह बाद में हिन्दुओं की कमजोरी यही रही है अर्थात् इनमें लडने और मरने मारने का माद्दह कम हो गया । इनमें जो प्रचारक उठता है वह शांति और अहिंसा का राग गाता है। इस लिए शांत स्वभाव वाले लोग हमेशा गुलाम रहते हैं । और उनका शीघ्र नाश हो जाता है क्योंकि यह संसार मर्दोंके लिये है हिजडों के लिये नहीं । भारतवर्ष में हिजडेपनही को धर्म और ज्ञान का आदर्श समझा गया है । बस इस क्षत्रियधर्म की ज्योति को जगाना ही हमारे उद्धार का साधन है । बाकी सब गुण हमारी कौम में है इस लिये श्रीकृष्णजी ने जो उपदेश अर्जुनको दिये थे उस पर ध्यान देना

चाहिए। और यह समझना चाहिए कि इस समय हर एक आदमी का फर्ज है कि क्षात्रधर्म का भाव अपने मन में पैदा करें। आज कल ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र सभी को क्षात्रधर्म की सेवा करनी पडेगी। केवल क्षत्रियों ही को नहीं सबको देश की रक्षा के लिये प्राण देने का प्रण करना होगा। और अर्जुनकी तरह लडाई के मैदान में डट कर खडा रहना पडेगा। अर्जुन ने बहुत वादविवाद के बाद यह साबित करना चाहाथा कि क्षात्रधर्म ठीक नहीं है और मरने मारने में कुछ अधर्म जरूर होगा, गोया न्याय और परोपकार की दृष्टि से क्षात्रधर्म जू प्यार दांत वाले जानवर का शोबा मालूम होता है। परन्तु श्री कृष्णचन्द्र ने उन्हें समझाया कि धर्मसंग्राम मनुष्य का पहला कर्तव्य है। न्याय और सत्य के लिये लडना और मरना मारना पाप नहीं बरन् पुण्य है। धर्म संग्राम से ही दुष्ट और जालिमों तथा अत्याचारियों का संहार हो सकता है। और प्रजा की रक्षा की जा सकती है। क्षात्रधर्म के बगर देश में सिर्फ लंगडे, लुले दुर्बल, गुलाम रह जायेंगे, इसलिये क्षात्रधर्म की जागृति करना हमारा धर्म है। श्रीकृष्ण जी स्वयं वीर थे और दूसरों को वीर बनने का उपदेश देते थे।

सब शक्तियों का पूर्ण विकास करके शरीर, बुद्धि और आत्मा तीनों की उन्नति करना और क्षात्रधर्म की महिमाको समझना ही आज विपत्ति काल में भी श्रीकृष्णजी का संदेश और उपदेश है।

शुद्धि विषयक कार्य की रचना।

(लें. कुँवर चांदकरण शारदा)

मुझे पूर्ण आशा है कि सधः स्थितिका विचार कर आपको अब शुद्धि विषय में कोई भी शंका नहीं रही होगी। अब मैं आपका ध्यान आपके कर्त्तव्य के प्रति आकर्षित करना चाहता हूं। हिन्दू जाति में से गुप्त-रीति से लाखों की तादाद में पुरुष और स्त्रियां मुसलमान और ईसाई बनाई जा रही हैं। भारत का कोई प्रदेश नहीं है जहां ईसाइयों और मुसलमानों के बडे बडे अड्डे न जमे हुये हों। ईसाई पादरियों ने अपने गुप्त कार्यों से ग्रामों में अद्भुत तेजी के साथ ईसाइयत फैलादी है और मुसलमानों की चालें तो "दाइये इस्लाम" उर्फ "खतरे के घंटे" से सब जनता को भली भांति विदित हो गई हैं। उसमें मौलाना हसन निजामी साहब लिखते हैं "मैंने दस हजार आदमी इस काम के लिये तय्यार किये हैं। मैं मुसलमानों को

यह घोषणा करने के योग्य समझूंगा कि वह एक वर्ष के प्रबल से ५० लाख हिंदुओं को मुसलमान कर लेंगे। मुसलमानों का दावा बिलकुल सच्चा होगा। क्योंकि आर्य्यों में जज्ब करने की शक्ति नहीं है। " उपरोक्त वाक्य पढकर हिन्दुओं को चाहिये कि इस समय परस्पर का द्वेष छोडकर शुद्धिकार्य्य में लगें और सच्चे दिल से बिछुडे भाइयों को गले लगावें। मैने गुजरात प्रांत में भाई आनन्दप्रियजी के साथ महीनों भ्रमण कर आगाखानियों के हथखण्डे देखें है।

वे गांव गांव मे "जमातखाने" खोलकर उनमे दलित लोगों को चाय पिलाकर बराबर उन्हें मुसलमान खोजे बनाने का प्रयत्न कर रहे है। उनकी पाठशालायें, बोर्डिंगहाउस, रिक्रीयेशन क्लब आदि सब मुसलमानी धर्म प्रचारार्थ खुले हुए हैं। इसी प्रकार ईसाइयों के ग्राम ग्राम में गिर्जे बने हुये है और प्रत्येक गुजरात के "ढेढवाडे" में मुक्तिफौज का एक एक पादरी रहता है, जो दिन रात अछूतों को ईसाइयत की ओर झुकाता रहता है और उनके बालकों को पढाता रहता है। तबलीग वालों की कान्फ्रेंस जो हाल में ही अजमेर में हुई थी उसके देखनेसे तथा रिपोर्ट पढने से यह स्पष्ट विदित होता है कि मुसलमान किस तेजी के साथ पक्का काम कर रहे है। अकेले अजमेर जिले के गांवों में तबलीग वालों की ओर से १८ स्कूल खुले हुये हैं जिनके द्वारा बिछुडे हुये राजपूतों, मेहरातों को पक्का मुसलमान बनाया जा रहा है। और जयपुर, भावलपुर, भोपाल, निजाम हैदराबाद आदि सब ही रियासतों के मुसलमान अफसर खुल्लमखुल्ला न केवल तबलीग वालों की कमेटी को रुपैये देते हैं बल्कि अधिकारी बनकर काम कर रहे हैं। इसके विरुद्ध कुछ हिन्दू रियासतें कायरता से डरती है और विशेष कर अलवर व जोधपुर आदि शुद्धि के विरोधी बनकर शुद्धि के प्रचारकों वो हिन्दू होते हुये भी अपने राज्य मे शुद्धि नहीं करने देते। इस प्रकार करोडों हिंदुओं का धर्म भयानक स्थिति में है और हिंदू जाति पर महान आपत्ति का समय है। ऐसे समय व्याख्यानबाजी और बातें बनाना छोडकर हमें रचनात्मक काम में लग जाना चाहिये।

(१) मलकाने, मेघ, मेहरात, चीते, कायमखानी, लालखानी, लोहार, हलवाई, जोगी, दासी, गद्दी, अहीर, भाट, संयोगी, तगे, मुसलमान—कायथ, मूले जाट, मूले गूजर, मोमनजादे, मेमन, मोमना, सतपंथी, परिणामी, आगाखानी, अलीवाले, मुसलमान, सूद, जैनियों के गन्धर्व, बनजारे आदि अनेक जातियां जो भारत के भिन्न भिन्न विभागों में बसी हुई है और अब तक हिन्दू रीतिरिवाज मान रही है, उन्हें शीघ्र ही हिन्दू धर्म में सम्मिलित करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। ताकि प्राचीन आर्य्यधर्म और हिन्दू-सभ्यता की रक्षा हो।

(२) शुद्ध हुओं के साथ छूतछात आदि के भाव बिलकुल हटा देने चाहियें। सब का खानपान एक साथ एक हि पंक्ति में बैठकर होना चाहिये शुद्ध हुओ को गुण कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कहना चाहिये। और उनके साथ विवाह सम्बन्ध में भी किसी प्रकार की बाधा नहीं होनी चाहिये। बल्कि अपने योग्य लडके लडकियों का उनके योग्य लडके लडकियों के साथ विवाह संबन्ध कर-देना चाहिये।

(३) सदा शुद्ध हुओं के साथ ऐसा प्रेमपूर्ण व्यवहार रखना चाहिये ताकि उसकी हिन्दू-धर्म को छोडकर जाने की इच्छा ही न हो।

(४) प्रत्येक हिन्दू को मुसलमान ईसाई के सामने सदा वैदिकधर्म का महत्त्व बतलाते रहना चाहिये।

बाइबिल और कुरान की असंभव तर्कशून्य कथाओं का पवित्र वेदों से मुकाबला कर बाइबिल और कुरान की निःसारता दर्शाते रहना चाहिये और आर्य्य-सभ्यता के गौरव की छाप उनके हृदयों पर लिख देनी चाहिये।

(५) किसी भी हिन्दू को जब कभी कोई विधर्मी मिले और शुद्ध होने की इच्छा प्रकट करे तो विलम्ब न करना चाहिये परन्तु स्वयं ही दो चार आदमी मिलकर हवन कर कर शीघ्र ही शुद्ध करलेना चाहिये।

(६) शुद्धि का विरोध विधर्मी अब भी कर रहे हैं और भविष्य में भी करेंगे परंतु हमें तनिक भी नहीं डरना चाहिये और आपना काम चुप चाप बिना समाचारपत्रों में लेख दिये करते चले जाना चाहिये। यदि आपकी नसों में ऋषि मुनियों का रुधिर प्रवाहित हो रहा है और अब भी वैदिक धर्म-पर अभिमान है और हिंदू जाति की दुर्दशा देखकर आपको गैरत आती है और आप अपने सामने अपने पूर्वजों और आर्य्य सभ्यता की मान मर्यादा कायम रखना चाहते हैं और पुनः चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित करने के सुख-स्वप्न देखते हैं तो उठो और शुद्धि में लगो तब ही शान्ति फैलेगी तब ही सच्ची सफलता प्राप्त होगी और भारत में निश्चय ही दूध और घी की नदियां बहेंगी और वैदिक धर्म की जय होगी। बोलो वैदिक धर्म की जय।

आसन का प्रभाव।

एक सुप्रसिद्ध डाक्टरकी अविवाहित तरुण कुमारिका लिखती है —

ता. १८। ४।२५

" महाशय

आपके पत्र में मैंने पढा कि शरीरका स्वास्थ्य (Thyroid gland) निकंठ मणिके आरोग्यपर है, तबसे मैंने सर्वांगासन का अभ्यास प्रारंभ किया। पंद्रह दिनोंके अभ्यास से ही मै बीस मिनिट तक यह आसन करने लगी।

दस बरस के करीब समय व्यतीत हुआ जबसे कि मेरे सिरके पीछे लाल दादके धब्बे बन गये थे और उन पर कई प्रकारके इलाज किये जानेपर भी वे धब्बे हटते नहीं थे।

पंद्रह दिनोंके सर्वांगासन के अभ्यास से वे धब्बे सूखने लगे और तीन मास के अभ्यास से बिलकुल हटगये! गत तीन मासों में मैंने इस आसन का अभ्यास छोडा हुआ है तथापि वह दाद फिर नहीं उत्पन्न हुई। तथा मेरी पाचन शक्ति जो बचपनसे सुस्त

थी,इस आसनके अभ्याससे बहुत कुछ सुधर गयी..."

भवदीय...

(संपादकीय) सर्वांगासन के करने से निकंठ मणि का सुधार होकर उक्त कुमारिका के धब्बे हट गये अथवा सर्वांगासन में और कोई गुणधर्म है जिससे कि उक्त लाभ हुआ । इसका विचार सुविज्ञ वैद्यों और डाक्टरोंको करना चाहिये ।

(ये गर्भमीमांसा)
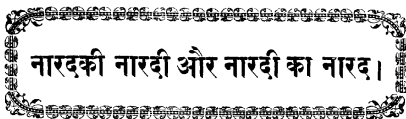
नारदकी नारदी और नारदी का नारद।

पुराणों में नारद की कथा सुप्रसिद्ध है कि वह अपनी कुछ आयुतक प्रथम पुरुष रहा, पश्चात् स्त्री बना, तत्पश्चात् पुनः पुरुष बना । हमें यह कथा पहले पहले गप्पसी प्रतीत होती थी और अबभी वैसी ही प्रतीत होती है तथापि आजकल कई कथाएं स्त्रियोंके पुरुष बन जानेकी प्रसिद्ध हुई और ज्ञात हुई है, इसलिये पूर्व उक्त नारद की कथा में भी कुछ सत्य अंश होने की संभावना प्रतीत होने लगी है ।

स्त्रीका पुरुष बन जानेकी कथा जो वृत्तपत्रोंमें आजकल प्रसिद्ध हुई वह प्रथम यहां देते है । --

लडकी से लडका बन गया !

बाम्बे क्रानीकलके कुस्तुन्तुनिया के संवाददाता लिखते है कि:--

" पहले हम लोग पढा करते थे कि जिस समय इसलाम की कीर्तिध्वजा फहरा रही थी उस समय हकीमों ने इस बातकी अन्वेषणा की थी कि कुछ मनुष्योंमें स्त्री तथा पुरुषेन्द्रिय दोनों के चिन्ह प्रारम्भिक अवस्था में वर्तमान रहते है जो कि किसी कारण से शनैः शनैः बढकर पूर्णतया पुरुषेन्द्रिय के रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं । ठीक इसी प्रकार की आश्चर्य जनक घटना कुस्तुन्तुनियां मे भी हुई जिसे पाठक पढ कर हैरान रह जायेगे । १३ वी जून की रात्री के समय केवल एक ही विचार "सेमे हनूम" स्त्री के हृदय मे था जिसने रात्री भर उसे जागृत रक्खा " क्या कल मैं पुरुष हो जाऊंगी अथवा मेरे भाग्य में स्त्री ही रहना बंधा है " ? सेमे हनूम , २१ वर्ष तक अतालिता के प्रान्तिक नगर की कन्या पाठशाला की प्रधानाध्यापिका थी तथा गत १४ वर्षों से वह पुरुषेन्द्रिय की उन्नतिको अनुभव कर रही थी । वह अपने कुटुम्ब के बार बार कहने पर भी विवाह नहीं करती थी क्यों कि वह अपने को स्त्री नहीं समझती थी इसी सन्देह

में वह दिन रात व्यतीत करती थी।

उसकी कक्षा की कुछ सहेलियां इस बात को जान-कर कि वह वास्तव में स्त्री नहीं थी अपि तु किसी रूप से उसमें पुरुषेन्द्रिय का चिन्ह था उसकी काली आखों तथा स्निग्ध चितवन पर मुग्ध हो गईं और इस प्रकार से अपना प्रदर्शन करने लगीं कि मानों वह पुरुष थी वह कन्याओं की समस्त प्रेम प्रार्थनाओं को अस्वीकृत कर देती थी। दूसरी ओर नवयुवकों ने भी अनेक प्रलोभन दे कर उस से विवाह करना चाहा किन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। अन्त में वह दिन भी आ पहुँचा जब कि वह पुरुष होने के विचार को न दबा सकी। जब दाढी मूंछ आने लगीं उस समय वह अधिक खिन्न हुई। वह खूब अच्छी तरह से दाढी बनाती थीं तथा अधिक पाउडर लगाती थी ताकि स्त्री की भांति सुन्दर चेहरा मालूम पडे। किन्तु वह अपनी आवाज को किस प्रकार बदल सकती थी? उसकी आवाज स्त्रियोंसे विरुद्ध थी तथा प्रत्येक मनुष्य को उसके पुरुषत्व में सन्देह उत्पन्न कर देती थी। इसके पश्चात् स्टेम्बूल जाने के पूर्व ही उसने अपने कुटुम्ब को इस आश्चर्य जनक घटना को बतलाया। इसको सुन कर उपस्थित जन स्तब्ध हो गये। उसकी माता ने डाक्टर से पूछने की सलाह दी थी। पहले भी जिस समय उनका वक्षःस्थल उन्नति नहीं कर रहा था, उस समय उसकी डाक्टरी परीक्षा हुई थी।

परन्तु डाक्टरों ने वक्षःस्थल की उन्नति न होने का कारण शारीरिक निर्बलता बतलाई। किन्तु उसके कौटुम्बिक डाक्टर ने अब परीक्षा करने के पश्चात् यह बतलाया कि यह पुरुष है। किन्तु पुरुषोंकी पवित्र सोसाइटी में प्रवेश करने तथा स्पष्ट रूप से स्त्री सम्बन्धि लज्जाको तिलाञ्जली देनेके पूर्व यह पर्याप्त नहीं था। क्योंकि यह उसकी धारणा थी की पहले एक अच्छे 'मेडिल कमीशन' कि उपस्थिति में उसकी परीक्षा की जाय।

१३ ता० के प्रातः काल उसकी परीक्षा अच्छी तरह की गई। उसने अब पुरुष होने का प्रमाण पत्र प्राप्त किया तथा अस्पताल से पुरुष होकर निकली तथा ईश्वर को धन्यवाद दिया कि वह स्त्रियों की जाति से बाहर हुई। उस ने पुरुषों का बाना धारण किया तथा अपने जीवन में प्रथम बार जुमा नमाज पढने के लिये बडी मसजिद में गयी या वह (पुरुष) गया?"

इस कथा में स्त्रीका पुरुष बननेका विधान है। जो कई वर्ष स्त्री रही, वही आगे पुरुष रूपमें परिवर्तित होगई, अथवा जिसको कुमारिकावस्थामें डाक्टरोंनेभी स्त्री मान लिया था, उसीको आगे की आयु में डाक्टर लोग पुरुष माननेको सिद्ध हुए!

इस में वास्तविक बात यह है कि बालकपन में स्त्री पुरुष पहचानने के चिन्ह उनके इंद्रियही होते हैं। जब आयु बढ जाती है तब अन्य चिन्ह प्रकट होते हैं। यदि किसी कारण पुरुष बालक को पुरुषेंद्रिय के स्थानपर स्त्रीसमान इंद्रिय रहा, तो उसको बालिका माननेमें किसी को भी संदेह नहीं होगा। परंतु आयु के बढ जाने पर वास्तविक स्वरूप प्रकट होगा ही। इसी नियमानुसार उक्त कथा में जो पहिले स्त्री समझी जाती थी वह वास्तवमे पुरुष ही था, परंतु इंद्रियोंकी विकृतिके कारण प्रारंभिक आयुमें उनके पुरुष होनेकी कल्पना किसी को भी नहीं हुई, पश्चात जब अन्य चिन्ह प्रकट हुए तब लोगोंको संदेह हुआ और परीक्षा करनेके पश्चात् उनका पुरुष होना सिद्ध होगया। ठीक इसी प्रकार यहां औंध में भी एक वृत्तांत हुआ जो कि अब यहां देते है।—

औंध में स्त्रीका पुरुष।

चौदह वर्षके पूर्व सन १९११ में यह घटना हुई। यहां पासही कोरेगांव नामक एक स्थान है वहां श्रीयुत पांडुरंग शास्त्रीजी रहते है। उनकी पुत्री गोदावरी, इस का विवाह सन १९०६ में एक स्टेशन के गुडस क्लार्क के साथ हुआ था।

महाराष्ट्रमें रिवाज है कि विवाह होते ही श्रावण मासके मंगलवार के दिन मंगलागौरी की पूजा बडे ठाठ से की जाय। इस पद्धतिके अनुसार श्रीमती गोदावरी बाई भी इस दिन सन १९११ के श्रावण मास के मंगलवार में मंगलागौरी की पूजा कर रही थी। इस समय उनकी आयु करीब सोलह वर्षकी थी। गोदावरी बाईजीके साथ मंगलागौरीकी पूजा करनेके लिये कई विवाहित लडकियां बुलाई गई थी और बडा ठाठ चल रहाथा, परंतु गोदावरी बाई का चित्त पूजा में न था, वह अपने अंदर स्त्रीत्व के विरुद्ध कुछ लक्षण अनुभव कर रही थी और इस कारण उनका मन अप्रसन्नसा था।

स्त्रियों की कोमलता उनमें न थी, छाती पुरुष के समानही थी, कमर भी पुरुषों के समान थी तथा अवाज भी मर्दानी था। तथापि उनका इंद्रिय स्त्रीके समान ही होने के कारण उनके स्त्री होनेमें किसी को संदेह नहीं होता था। उनकी प्रवृत्ति भी पुरुषों के कर्म करनेमे अधिक थी और स्त्रियों के कर्म करना उनको वैसा पसंद नहीं था।

तथापि आयु के सोलह वर्ष गुजर जानेतक यह गोदावरी बाई अपने आपको स्त्रीही समझती थी। परंतु सोलह वर्ष होनेके पश्चात भी ऋतु प्राप्ति नहीं हुई, रजोदर्शन नहीं हुआ, इसलिये बडी फिक्र में पडी रहती थी। सभी स्त्रियों में यही विषय चलता था।

श्री.शंकर शास्त्री थिटे वैद्य, नरसोबावाडी मे रहते है, ये इस गोदावरी बाई के चचा है। ये इस गोदावरीबाई को लेकर औंध मे आये। और परिचित डाक्टरों से परीक्षा की गई तो प्रतीत हुआ कि ऊपर से स्त्री इंद्रियके समान यद्यपि आकृति है तथापि अंदर से पुरुष इंद्रिय की संभावना है। यह विचार स्थिर होते ही उनका आपरेशन करने का निश्चय हुआ।

यहांसे समीप मिरज नगरमें डा० वालनेस अमेरिकन मिशनरी डाक्टर आपरेशनमें अत्यंत प्रवीण है उनके पास जाकर आपरेशन किया गया तो पता लगा कि सचमुक यह पुरुष ही था और उसको स्त्री मानना धोखा ही हुआ था। उक्त डाक्टरने स्त्री इंद्रियका पर्दा काटकर पुरुष इंद्रिय खुला किया और पहला मूत्र मार्ग बंद करके नवीन मार्ग खोल दिया।

इस रीतिसे अपनी आयुके सोलहवे वर्ष यह स्त्रीका पुरुष बन गया और अब इसका नाम म. गोविंदराव है। थोडे ही दिन हुए इनकी स्कूलकी परीक्षाएं उत्तीर्ण हुई है और अब विवाह करनेकी तैयारी चल रही है!!

स्त्री रूपमें एकवार इनका विवाह हो चुका था, अब पतिरूपमें इसीका दूसरा विवाह होने वाला है!! अस्तु।

ये दोनों उदाहरण अवयवोंकी विकृतिके है। अवयवोंके बदल जानेकी संभावना भी कई हालतो में होती है ऐसा कई लोगोंका कथन है। हम नहीं कह सकते कि वह कहां तक सत्य है। नारद की नारदी बन जाना और पुनः उस स्त्रीका नारद बनना यह संपूर्ण अवयवों के परिवर्तन का उदाहरण है। यह बात पूर्वोक्त दोनों उदाहरणों से सिद्ध नहीं होती। डाक्टरों और वैद्योंको इसकी खोज करनी चाहिये कि कहांतक इतना परिवर्तन संभवनीय है।

प्रेतात्माओं का फोटो।

(ले०– श्री. पं. ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य)

नियत समय पर मैं मिसिज डीनके पास पहुंचा। उन के कमरे में बैठाया गया, कमरा एक छोटासा सुन्दर सजा हुआ था जिसके अन्दर एक अलमारी परलोक विद्या की पुस्तकों से पूर्ण यह दर्शाती थी कि यहां के निवासियों को पुस्तकों से कितना प्रेम है। कुछ देरके पश्चात् एक वृद्धा स्त्री प्रविष्ट हुई और अत्यन्त प्रेमसे मिली। यही मिसिज डीन थीं। ऋतु आदि की बात चीत के अनन्तर उसने पूछा क्या मिस स्टैड ने आप को सब कुछ बताया था। मैं ने कहा मुझे तो बतलाया गया था कि आपकी फीस २५ शिलिंग (लग भग १८ रुपये) हैं। और कोई बात हो तो बत लावें। उन्होंने कहा कि मैं गारंटी नहीं करती कि अवश्य आप के चित्र के साथ किसी रूह का चित्र आवेगा, कभी आता है कभी नहीं आता है, मैं ने कहा मेम साहिबा! मुझे यह भी स्वीकार है, परन्तु यह बतलावें कि चित्र आता है और वस्त्रों समेत कैसे आ जाता है ?सूक्ष्म शरीर न दिखाई देनेवाला छाया चित्र के शीशा पर कैसे प्रतिबिम्ब दे देता है ? उन्होंने कहा मुझे ज्ञान नहीं परन्तु इतना जानती हुं कि मेरे अन्दर कोई शक्ति है जिसको रूहें लेती है और अपनी प्रकृत आकृति प्लेटपर देती हैं और नग्न प्रकट होने की अपेक्षा मानसिक वस्त्रों से युक्त अपने आप को प्रकट कर ती हैं, इस प्रकार की बातें होती रहीं तब हम फोटो के कमरे में गये, ग्रामो फोन चला दिया, जिसमें एक भजन गायन किया गया, जब वह बन्द हुआ, तब एक प्लेट मेरे हाथों में रख कर उपर अपने हाथ रख कर मिसिज डीन ने प्रार्थना आरम्भ की। अपने धार्मिक विचारों के अनुसार मंगल चाहा और रूहों से कहा कि ऐसी कृपा करें कि हमारे इस मित्र को परलोक विद्याका दृढ निश्चय हो किसी एसी रूहका चित्र हो जिसको यह पहचान सकें इस के पश्चात् प्लेट को कमरों में रख कर मेरा चित्र उतार दिया गया और लग भग दो मिंट के हाथ फैलाये नेत्र बन्द किये कैमरा के पास वह लेडी खडी रही। मुझे चुप चाप रहने को कह दिया था। मेरा विचार है कि चित्र तो शीघ्र लिया गया था शेष बात विश्वास दिलाने के लिये ही थी। तब वह लेडी मुझे अपने साथ डार्क रूम (अन्धेरी कोठरी) में जहां प्लेट डिवलप की जाती है साथ ही ले गई। मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ जब कि मैने देखा, कि मेरे चित्र के ऊपर एक और स्त्री का चित्र था जिसका एक साधारण सा प्रूफ मैने ले लिया था और अब साथ भेजा जाता है, इस को मैं पहचान नहीं सकता था, परन्तु यह आवश्यक नहीं कोई भी प्रेतात्मा वहां पर विद्यमान हो सकती है कहिये महाशय जी अब क्या शंका शेष रही परन्तु मेरे हृदय ने साक्षी अभीतक न दी। नाना प्रकार के विचार उठने

लगे और मैंने कहा कि मेरा चित्र एक और लिया जावे परन्तु उसने कहा कि अब वह शक्ति चली गई है। मैं दिन भर की थकी हुई भी हूं, कल प्रातः आप पधारें और दूसरा चित्र भी लिया जावे। अगले दिन प्रातः मैं वहां पहुंच गया। मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि क्या यह सम्भव नहीं है कि कोई चित्र प्लेट के ऊपर के भाग में पहिले ले रखी जाती हो और फिर दूसरा चित्र उस मनुष्य का लिया जाता हो, मैं ने समझा कि बजाये एक के दो चित्र लिये जावें, विचार मेरा यह था कि एक प्लेट मांग लूंगा और फिर स्वयम् इस को डिवलप कर के देख लूंगा कि इस में कोई चित्र है वा नहीं जब ग्रामोफोन बज चुका और प्रार्थना हो चुकी तो मैं ने प्रार्थना की, कि फीस तो मैं ने पूरी ही देनी है, मुझे एक प्लेट बिना चित्र लेने के दी जावे इस से वह क्रुद्ध हुई और कहा यदि मुझ पर विश्वास नहीं तो आप जा सकते हैं। मैने कहा मेम साहिबा! मैं जिज्ञासु हूं मुझे अपना पूर्ण विश्वास इस विषय में कर के फिर इस में प्रविष्ट होना है अतः आप को क्रोध न कर के मेरी सन्तुष्टि करना चाहिये परन्तु उसने कहा कि एक वार मैं ने ऐसा किया था तो कोई चित्र उस प्लेट पर पीछे रखकर मुझे बदनाम किया गया था, कि मैं ने प्रथमही चित्र ले रखा था, वार्तालाप के पश्चात् बात यहां ठहरी कि वह एक प्लेटको चित्र लेने के बिना डिवलप करें जब वह प्लेट डिवलप की गई तो उस पर कुछ न था अब तो मैं विश्वास करने पर उद्यत था परन्तु एक विचार एकदम ही और उठा। मैं ने कल मेम साहिबा को, एक और चित्र लेने को कहा था सम्भव है एक ही प्लेट तैयार कर के रखी हो, और जब मैं ने दो कहा, तो दो चित्र लेने को उद्यत हो गई, क्यों कि एक पर कोई रूहका चित्र न आया। तब भी कोई बात न थी क्यों कि पहिले वह कह चुकी थी कि मैं गारंटी नहीं करती। तब प्रार्थना के पश्चात् जब वह दूसरी प्लेट कैमरे में रखने लगी, तो मैंने कहा मेम साहिबा, इस प्लेट को भी मेरे चित्र लेने के बिना ही डिवैलप किया जावे तब उसने कहा रूहों के लिये यह आवश्यक नहीं है कि जब आपका चित्र लिया जावे तब ही अपना चित्र दें जब कि प्लेट बन्द है। वह तब भी अपना प्रतिबिम्ब इस पर डाल सकते हैं और यह सम्भव है कि इस शीशा पर कोई चित्र और आगया हो या न आया हो अतः यदि कोई चित्र आगया तो इस से यह नहीं समझना चाहिये कि इस में कोई धोखा था चित्र ठीक किया गया और उस पर मेरे चित्र के बिना एक रूह का चित्र विद्यमान था आश्चर्य यह था कि रूह का यह चित्र भी प्लेट के ऊपरले भाग में था जिससे मुझे यह शङ्का नहीं, प्रत्युत विश्वास करने का पूरा अवसर मिला कि इस में सत्यता नहीं प्रत्युत ठीककोई चित्र पहिले प्लेट पर लिया जाता है। मै ने समझ लिया कि यह विद्या सत्य है वा झूठ, इसका निर्णय तो अभी क्या करूं यह मैं कह सकता हूं कि बड़ी विख्यात रूहों के चित्र लेने वाली स्त्री ने रूहों का चित्र नहीं लिया है और मैं चकित हूं कि ऐसा क्यों किया जाता है। वह तसवीर पीछे भेजनेकी प्रतिज्ञा करके अभी तक मेम साहिबा ने मुझे नहीं भेजी नहीं तो यहां देता लेडी साहिबाकी फीस दे कर एक—

रूहों (प्रेतात्माओं) से बात चीत

करने की धुन में मिसज कूपर के पास मैं पहुंचा जो कि मिस स्टेड ने बताया था कि वह केवल एक स्त्री है जिसकी संगत में बैठ जाने से इधर उधर से

रूहें बोलना आरम्भ कर देती हैं । वह चाहे किसी स बात चीतकर रही हों परन्तु इसकी उपस्थिति रूहों के अन्दर प्राकृतिक शक्ति शब्द की उत्पन्न करती हैं । मिस स्टैंड ने कहा कि अपने पिता के मरने के १४दिन पश्चात् मैं नें स्वयम् उनसे बात चीत की थी मिसेज कूंपर एक सुन्दर और चतुर समझदार लेडी है मुझे एक कमरा में ले गई, यहां चारों ओर श्याम परदे कर के सर्वथा अन्धेरा किया गया, हाथ पसारा दिखाई नहीं देता था बाजेकी मशीन चलाई गई, दो कुरसियों पर हम पास पास बैठ गये, मेरा एक हाथ मिसिज कूंपर ने अपने हाथ में ले लिया, और भजन प्रार्थना आरम्भ की, थोडी देर के पश्चात् मिसिज कूंपर ने कहा कि मिस बर्टन एक रूह आई है वह बात चीत करेगी, रूह का शब्द क्या था जैसे कोई पुरुष वा स्त्री लम्बे तूते में से शब्द निकाल रहा हो और दो तूते अन्धेरा करने से पहिले एक और इस ने रख दिये थे और बतलाया था कि प्रेतात्माएं इसी के अन्दर से बात चीत करती हैं। मूंह फुलाकर मोटे शब्द करके भी जैसे कोईभी पुरुष वा स्त्री बात करे, इसी प्रकार का शब्द था कुछ अपने सम्बन्ध में बतलाये जाने के अनन्तर जिससे मुझे कोई सम्बन्ध नहीं मैं ने श्रीमती प्रेतात्मा को कहा कि हमारे हां कि कोई रूह मंगावो शब्द आया पञ्जाब! पञ्जाब ! । लेडी साब साथ कहती जाती थी कि पंजाब से रूह आई है, धन्यवाद करो, परन्तु जब लेडी बोलती थी तब रूह बात चीत न करती थी मैने पञ्जाबी में बात की कि जब तुम पंजाब से आई हो पञ्जाबी बोलो। परंतु रूह साहिबा कुछ बोलती तो रही परन्तु मुझ को समझ नहीं आया, जान पडता है कि कुछ शब्द लेडी साहिबा को हिन्दुस्तानी के स्मरण थे। तब मैंने इंगलिश में कहा, मेरे पिता पण्डित मूलचन्द जी को जानती हो ? हां ! वह किस प्रकार मरेथे ? चोटसे ! यह ठीक बात थी, फिर मैंने कहा कि मेरी माताकी किस प्रकार मृत्यु हुई थी, कहा कैंसर फोडे से, यह ठीक न था, मैंने कुछ और पूछना चाहा तो शब्द आया कि पहिली बार अधिक परीक्षामें न डालो, यह शब्द रूह का था, तब लेडी साहिबाने यह कहा कि रूह कहती है कि पहिली बार इतनी परीक्षा में नहीं डालना चाहिये । मैं समझ गया कि यह क्या हो रही है । फिर एका एक एक और जरा-सा प्रकाश प्रकट हुआ, देखो, देखो ! ! आत्मिक प्रकाश ! वह देखो बढ रहा है ! वह देखो रूह अपना मुख दिखलाना चाहती है, नहीं इसने केवल अपना हाथ ही प्राकृतिक क्या है, वह उंगलियां स्पष्ट दिखाई देती हैं, क्या तुमने देखी हैं ! मैंने कहा हां देखी हैं ! वह प्रकाश मेरे कितने दूर हट गया, फिर एक ओर मेरे मुखके पास आता हुआ प्रतीत हुआ मैं ने हृदय में विचारा कब तक हाथ पाँव न हलाऊंगा अवसर हाथ से जाता है, मैंने शीघ्र प्रकाश पर जो कि मेरे मुखपर पहुंच गया था हाथ मारा तो वह श्रीमती लेडी साहिबा का हाथ ही प्रतीत हुआ, क्योंकि झट उन्होने परेकर लिया, और तत्क्षण जोशसे कहा कि आपने हाथ क्यों हिलाया यह तो तुमहारी माताने अपने आप को प्रकट किया है, रूहें हानि नहीं पहुचातीं, वह कोमल स्पर्श करती हैं । बोलने वाला लम्बा तूता एकवार रखते हुए मुझे स्पर्श कर गई तब भी झट कहा कि यह तुमहारी माताने आपको स्पर्श किया है, मैंने हाथ को इधर उधर लम्बे तूते पर भी मारा, परन्तु मिला नहीं कुछ देर के पश्चात वह गिरा लेडी साहीबाने कहा कि रूह फैंक गई है अब वह चली गई है प्रकाश किया गया और मैं लेडी साहिबाकी फीस १॥ पौंड प्रदान करके अत्यन्त शोक में वापीस आया, क्योंकि यहां भी मुझे सत्यता दिखाई न दी। मैंने बहुतेरा समय

और रुपया व्यय किया बहुत प्रयत्न किया परन्तु मुझे कुछ न मिला। शीघ्र प्रत्येक बात पर विश्वास करने वाले सम्भव हैं, शीघ्र निश्चय कर लेते होंगे परन्तु मैं सदैव से बात की जडतक पहुंचने का प्रयत्न करता हूं,मैं ने धोखाही देखा अतः कोई महाशय मुझे ऐसे पुरुष बतलावें जो कि ठीक मेरी बात चीत रूहों से करा सकें या उनके दर्शन करावें, तो मैं उनका कृतज्ञ हूंगा मैं विस्मित हुं कि यह संसार में हो क्या रहा है, मै इंग्लैंड से इसके एक दिन पीछे चल पडा था जर्मनी पहुंचकर मैं ने मिस स्टैड को पत्र लिखा कि फोटो और बात चीत दोनो बातें गलत हैं और मैं इसको साबित कर सकता हूं यदि न करूं तो ३०० पौंड हरजाना दूंगा और यदि उनका पोल खोल दूं तो वह मुझे केवल २०० पौंड दे दें यह शर्त स्वीकार हो तो मैं फिर आने को तय्यार हुं आप उनसे बात चीत करके इटली में वेनस शहर के पतेपर पत्र मुझे डालदें परन्तु वहां पहुंच कर जहां शेष मेरे सब पत्र मिल गये श्रीमती मिस स्टैड का कोई पत्र न मिला । शोक है कि २०० पौंड न मिले पढने वालों से कोई जावें तो वह बेशक ले लें।

आसन ।

(ले०-श्री-पं. कविराज अत्रिदेवजी गुप्त)
(पूर्व अंकसे समाप्त)

व्यायामसे जैसा कि अखाडों के मल्ल किया करते हैं - कि उससे यह बात स्पष्ट है उनका शरीर बहुत पुष्ट हो जाता है मांस पेशियों खूब उभर आती हैं परन्तु उन मांस पेशियों में संकोचशक्ति घटजाती है अर्थात् वह अब एक अवस्थामें ही रहने लगती है वह अवस्था उनकी अस्वाभाविक होती है- इसके बाद यदि वह और व्यायाम करते हैं अति-विकास हो जाता है, इससे मांस पेशियों को आराम नहीं मिलता और इसकी वही नुकसान जो कि एक बैलसे अधिक काम लेनेसे होते हैं, हो जाते हैं - जैसे यक्ष्मा " साहासिको यक्ष्मा " इसी प्रकार दूसरा पहलू जोकि बिलकुल व्यायाम नहीं करते उनमेसे विकाश शक्तिघट जाती है-उनमें संकोच ही रहता है- वह भी हानिकारक है-उससे मांसपेशी की स्वाभाविक विकाशशक्तिभी घट जाती है जैसा कि किसी अंगसे, बहुत देरतक काम न लेनेपर शक्तिक्षय हो जाता है—

इसलिये वह आवश्यक है कि व्यायाम ऐसा होना चाहिये कि जिसमें प्रकृतिके नियमसेही स्वभावतः ही अंगोंमें संकोच विकाश नियमित रीतिसे होता है- मांस पेशीयोंमें कठोरताकी अपेक्षा लचक ही होना उत्तम है- यदि लचक-के साथ कठोरता हो और भी उत्तम है।

बच्चेमें लचक वृद्धके अपेक्षा अधिक है वह दीर्घायु होता है - यही कारण है कि यदि कठोरमांस वाले को बीमारी होजावे तो वह कष्टसाध्य होती है, परन्तु लचकवाले की सुखसाध्य होती है इसके लिये वाग्भट का सूत्रस्थान देखना चाहिये –

इसलिये स्वाभाविक व्यायाम ही करना उत्तम है जिसमें कि कोई मांसपेशियां अपनी स्वाभाविक अवस्थामें ही रहें इस के विस्तार के लिये देखो (मैक फाडन एन्सायक्लोपीडिया आफ फिझिकल कल्चर भाग४ और ५।)

इस लिये लेखक का अपना निश्चय है कि प्रकृति से उत्पन्न सब विकार उस प्रकृति की ही सहायता से अच्छे हो सकते हैं चूंकि

"जायन्ते हेतुवैषम्याद्विषमा देहधातवः।
हेतुसाम्याच्छमस्तेषां स्वभावोपरमः सदा॥"

आत्रेय.

हेतुके विषम होनेसे देह धातु विषम होकर विकार करते हैं उन के साम्य होने से रोग शान्त हो जाना है चूंकि अपनी पूर्वावस्थामें आना ही सब का स्वभाव है इस लिये प्रकृति का ही अनुसरण करना चाहिये।

आसन-यह एक ऐसी व्यायाम है जो कि प्रकृति के साथ ही ज्यादा मिलती है जिसमें कि शरीर के किसी भी अंगमें अनुचित दबाव या भार नहीं पडता

"स्थिरसुखमासनम्"

पातंजल योगसूत्र।

अपि तु भिन्न भिन्न आसनों में भिन्न भिन्न अंगोंपर विशेष प्रभाव पडकर उनमें सौष्ठव निरोगता पैदा होती है- आसन वही है जिस से सुगमतासे देरतक बैठ सकें

आसन और वात संस्थान—
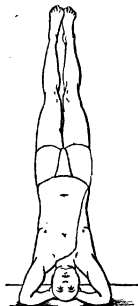
उपरोक्त पंक्तियोंसे यह स्पष्ट है कि वातसंस्थान हमारे शरीरको धारण करता है- उस को नियमित और नियंत्रित करने के लिये एवं मिथ्याहार विहार से उत्पन्न विकारों के शमन के लिये किसी एक उपाय की आवश्यकता है वह उपाय प्रकृति के अनुसार जितना स्वाभाविक हो उतना ही उत्तम है। क्षयरोग की चिकित्सामें हम प्रकृतिके अनुसार ही चिकित्सा करते हैं जैसे मोती शंख वंशलोचन का देना खुली वायु और धूपका सेवन इत्यादि। इसलिये आसन और उसके सहायक आपदेवता की आवश्यकता है - जैसा कि मैं अपने आसनों के वर्णन में साफ करूंगा-

वातसंस्थान को अपने स्वाभाविक अवस्थामें आसनोंसे अतिरिक्त कोई और व्यायाम नहीं कर सकती। जिस प्रकार की नींद का न आने का "शीर्षासन" के द्वारा, स्वप्नदोष का "सुखासन" जानुपादासन से चला जाना सिद्ध है।

चिकित्सा सूत्राणि —

" आभि: क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां स्मृतम्
प्रयोगे शमयेद् व्याधीनन्यान्यमुदीरयेत्।
नासौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत्।
या क्रिया व्याधिहरणी सा चिकित्सा निगद्यते।
दोषधातुमलानां या साम्यकृत्सैव रोगहृत्।

जिस क्रियासे शरीरके विषम धातु साम्यावस्थामें हो जावें वही चिकित्सा है। जिससे कि वर्तमान उपस्थित रोग नष्ट हो जावें और दूसरा उत्पन्न न हो वही चिकित्सा है जो दूसरों को उत्पन्न करे वह चिकित्सा नहीं.

वातपित, कफ और सप्त धातु साम्यावस्थामें रखना ही निरोगता है विषमावस्थामें होना ही विकार या रोग है इसलिये —

"अच्छा होने की अपेक्षा रोगी न होना उत्तम है" और यह बात आसन व्यायाम से सुगमतासे सिद्ध हो सकती- इसलिये यही व्यायाम-- अथवा दूसरे शब्दोंमें शारीरिक व्यायाम करना उत्तम है-- इससे ऋषि आत्रेय का यह सूत्र भी —

"त्रयो विष्टम्भाः शरीरस्य आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति" अक्षरशः चरितार्थ होता है इस लिये इन्ही तीनों वस्तुओंको उत्तम रूपमें रखना ही आरोग्यता है और इस आरोग्यता का एक मुख्य साधन आसन व्यायाम है—जिसका भली प्रकार आहार जीर्ण हो जाता है उसे भलीप्रकार नींद स्वप्न आती है जिसकी नींद अच्छी है उसका ब्रह्मचर्य है। यह तीनों अपने आप एक दूसरे पर निर्भर करते हैं एकेक विकार होनेसे दूसरे में भी विकार आजाता है इसलिये इनकी रक्षा करे।

सदाचारसम्बन्धी नियम।

(ले०— श्री० पं०युधिष्ठिरजी आचार्य गु० कु० हरियाना)

१ महर्षि दयानन्द महाराज प्रोक्त व्यवहारभानु की आज्ञानुसार निम्नलिखित दोषोंपर यथापराध कठिन दण्ड दिया जायेगा।

(१) बुरी चेष्टा करना।
(२) मलिनता।
(३) मलिनवस्त्र धारण करना।
(४) अनुचित विधि से बैठना।
(५) विपरीताचरणकरना।
(६) निन्दा।
(७) ईर्ष्या।
(८) द्रोह।
(९) व्यर्थ विवाद।
(१०) लड़ाई बखेड़ा करना।

(११) चुगली करना
(१२) किसीपर मिथ्यादोष लगाना
(१३) चोरी करना
(१४) जारी करना
(१५) अनभ्यास
(१६) आलस्य
(१७) अतिनिद्रा
(१८) अति जागरण
(१९) अतिभोजन
(२०) व्यर्थ खेलना
(२१) इधर उधर अर सर मारना
(२२)अनुचित शब्दस्पर्शरूपादि विषयोंका सेवन
(२३)बुरे व्यवहारोंकी कथा करना वा सुनना
(२४) दुष्टों के संग बैठना॥

२— संस्कार विधिमें वर्णित ६२ धर्मसूत्रों द्वारा प्रतिपादित ब्रह्मचारियोंके निम्नलिखित कर्तव्योंका विधिपूर्वक परिपालन करनेमें न्यूनता होने पर भी यथापराध कठिन दण्ड दिया जावेगा। (१) विधिपूर्वक आचमन करना (२) दिनमें शयन न करना (३) आचार्य तथा अध्यापकों के आधीन रहना (४) क्रोध न करना (५) सत्यका परिपालन करना (६) मैथुनका परित्याग करना (७) बुरे गीतों को गाने और बजानेका परित्याग करना (८) अति स्नान न करना। (९) लोभ और भय का परित्याग करना (१०) मोह तथा शोक कभी न करना (११) रात्रिके चौथे प्रहर में जागकर शौच, व्यायाम, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासना, ईश्वरस्तुति, प्रार्थनोपासना और योगाभ्यास का आचरण करना (१२) सात्विक भोजन करना (१३) ग्राममें निवास न करना (१४) जूते और छत्र को धारण न करना (१५) शरीरके किसी अंगको व्यर्थ स्पर्श न करना (१६) अति खट्टा (इमली आदि), अति तीखा (लाल मिरचादि), अति कषैला, अतिक्षार, अतिलवण और रेचक द्रव्यों का सेवन न करना (१७) विद्या ग्रहण में यत्नशील होना (१८) मितभाषी होना (१९) सभ्यताका व्यवहार करना (२०) मेखला और दण्ड धारण करना (२१) अग्निहोत्र का अनुष्ठान नियमपूर्वक करना (२२) आचार्य जी तथा गुरुकुलके अन्य माननीय कार्यकर्ताओंको प्रातः सायं नमस्कार करना।

३—प्रत्येक अध्यापक महानुभाव सब ब्रह्मचारियोंके गुण दोषों को एक पृथक् पंजिका मे प्रतिदिन लिखा करेंगे, जिस का नाम "बृहद् शुक्ल कर्म चरित्र पुस्तक" होगा। दोषों के अनुसार दण्ड तथा गुणों के अनुसार साधुवाद भी अवश्य दिया जावेगा। सोलह वर्षसे न्यून आयुवालोंको ताडन द्वारा और उससे उपरकी आयुवालों को प्रायश्चित्त के द्वारा (अभोजन, अल्पभोजन, अल्पनिद्रा, मौन तथा जप इत्यादि) दण्ड दिया जावेगा।

४—प्रत्येक ब्रह्मचारीके नामकी शुक्ल कृष्णकर्मचरित्र पुस्तक भी बनाई जायेगी। जिसमें उसीके छांट कर(बृहत पुस्तकसे) लिखा जावेगा। इस कार्य को करनेके लिये एक विश्वास पात्र लेखक नियत किया जावेगा।

५—गुरुकुल के आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता का यह कर्तव्य होगा, कि वह अध्यापक आदि कार्यकर्ताओंके गुणदोषों को भी अवश्य लिखें। उनके समीप एक पृथक् पंजिका रहेगी जिसको वे पूर्ण रूपसे सुरक्षित रखेंगे।

६—इस बातका विशेष ध्यान रखा जावेगा कि ब्रह्म

चारियों तथा अध्यापकादि कार्यकर्ताओंके जीवन में ब्रह्मचर्य संबन्धी न्यूनता किंचिन्मात्र भी उपस्थित न हो सके । किन्तु यदि अभाग्यवश ऐसी कोई घटना उपस्थित होगई तो उसका वृत्तान्त सामान्य पंजिकाओंमें नहीं लिखा जावेगा । उसके लिये एक विशेष पंजिका बनाई जावेगी । उसमें केवल श्री आचार्य जी अथवा श्री मुख्याधिष्ठाताजी ही इस विषय की घटनाओंको लिखेंगे । इस विशेष पंजिका को विशेष रूपसे सुरक्षित रखा जावेगा ।

७ ब्रह्मचारियोंने अपनी वस्तुओंको भली भान्ति सुरक्षित रक्खा वा नहीं इसकी जाच पडताल के लिये एक बडी द्रव्यनिरीक्षणपंजिका बनाई जावेगी प्रत्येक मासके शुक्लपक्ष की अष्टमीको ब्रह्मचारियोंकी समस्त वस्तुओंका निरीक्षण करके उसका वृत्तान्त इस पंजिका में लिखा जावेगा । प्रत्येक ब्रह्मचारीके पास " द्रव्यदमन पंजिका " पृथक् भी रहेगी । उसमें वह अपनी विवेचना स्वयं ही करेगा ।

८ इस गुरुकुल में केवल वेदाभ्यास की शिक्षा नहीं दी जावेगी किन्तु व्रताभ्यास अर्थात् सदाचार की भी क्रमबद्ध और नियमपूर्वक शिक्षादी जावेगी ।

सदाचार का शिक्षाक्रम ।

यह शिक्षाक्रम दो भागोंमें विभक्त है ।

(१) व्रतारंभ वर्ग वा योगारंभ वर्ग (२) योगसाधनवर्ग ।

व्रतारंभ वर्गमें पांच कक्षायें होंगी ।

(१) प्रथम शौच वा पवित्रता (२) सत्सङ्गति (३) आज्ञापालन (४) श्रद्धा (५) सुपुरुषार्थ (६) सरलता (७) सीधा रहना (८) सामान्य वाचिक जप (ओ३म् तथा गायत्रीमंत्रका इस प्रकार पुनःपुनः उच्चारण करना कि दूसरे को भली प्रकार सुनाई दे सकें वाचिक जप कहाता है) (९) संध्या हवनका अनुष्ठान (१०) शरीरसम्बन्धी उन्नति ।

द्वितीयकक्षा ।

(१) निर्मल जल, विशुद्ध वायु, पवित्र अन्न का सेवन । (२) विद्या (३) सम्यग्ज्ञान (४) सत्य (५) शीत-उष्ण को सहन करना (६) प्रेमयुक्त व्यवहार (७) सुगम आसन (८) दीर्घश्वास (९) सामान्य वाचिक जप (१०) इन्द्रियसम्बन्धी उन्नति ।

तृतीयकक्षा ।

(१) निर्भयता (२) सहनशीलता (मान अपमान आदि सहन करनेका स्वभाव) (३) निश्चिन्तता (४) निर्लोभता (५) ह्री (पापकर्ममें लज्जा करना तथा धर्मानुष्ठानमें लज्जा न करना (६) निर्मोहता (७) निरभिमानता (८) सरल आसन (९) दीर्घश्वास (१०) विशेष वाचिक जप (ओ३म् तथा गायत्री मंत्रका अर्थ समझते हुए वाचिक जप करना) (११) इन्द्रियार्थसम्बन्धी उन्नति ।

चतुर्थ कक्षा ।

(१) धृति (२) क्षमा (३) दम (४) अस्तेय (५) इन्द्रियनिग्रह (६) धी (७) अक्रोध (८) कठिन आसन (९) सुगम प्राणायाम (१०) उपांशु जप (ओ३म् तथा गायत्री मंत्रका इस प्रकारसे जप करना कि दूसरे को सुनाई न दे केवल ओष्ठमात्र हिले (११) मनसम्बन्धी उन्नति

पंचम कक्षा ।

(१) धृति, क्षमा, दम आदि के मिश्रण का अभ्यास (यथा सावधानता—धी और दमका मिश्रण है तथा एकाग्रता दम और इन्द्रियनिग्रह का मिश्रण है।) (२) कठिन आसन (३) सरलप्राणायाम (४) उपांशु जप (५) वीर्यसम्बन्धी उन्नति ।

योगसाधन वर्ग ।

षष्ठकक्षा

(१) अहिंसा (२) ब्रह्मचर्य (३) अपरिग्रह (४) सन्तोष (५) स्वाध्याय (६) ईश्वरप्रणिधान (७) अतिकठिन

आसन (८) कठिन प्राणायाम(९) मानसजप (केवल मनसे ओ३म् तथा गायत्री मंत्रका अर्थ समझते हुवे जप करना जिसमें उच्चारण भी तथा ओष्ठभी न हिले। इस की एक विधि यह भी है कि जप करने वाला उपर्युक्त मंत्रको अर्थ समझते हुवे अपने मस्तकपर मनसे बारबार लिखे।)(१०) स्थूल प्रत्याहार (११) चित्तसंबन्धी उन्नति।

सप्तम कक्षा।

(१) यमनियमों के मिश्रण का अभ्यास (यथा वैराग्य सन्तोष और अपरिग्रहका मिश्रण है) (२) सम्पूर्ण आसन (३) अति कठिन प्राणायाम (४) मानस जप (५) कठिन प्रत्याहार(६)बुद्धिसंम्बन्धी उन्नति

अष्टम कक्षा।

(१) पूर्वकृत व्रताभ्यासों को स्थिर रखना (२) सम्पूर्ण प्राणायाम (३) मानसजप (४) अहंकार सम्बन्धी उन्नति।

नवम कक्षा।

(१) पूर्वकृत व्रताभ्यासों को स्थिर रखना (२) प्रत्याहार की अति कठिन विधि (३) मानसजप (४) आत्मासम्बन्धी उन्नति।

दशम कक्षा।

(१) पूर्वकृतव्रताभ्यासों को स्थिर रखना (२) प्रत्याहार की सम्पूर्ण विधि (३) ध्यानजप (४) सामान्यतः संसार और विशेषतः राष्ट्रसंबन्धी उन्नति॥

९ — प्रति दो मासके पश्चात नवीन ऋतुके आरंभकालमें उपर्युक्त व्रताभ्यासों की परीक्षा हुआ करेगी। इस परीक्षाके परिणामके अनुसार ब्रम्हचारियों की व्रताभ्यास की कक्षा तथा क्रममें परिवर्तन किया जावेगा। जिस ब्रह्मचारिने गत दो मासों में अपनी कक्षामें नियत किये हुवे कर्तव्योंका परिपालन भली भान्ति किया हो और जो अधिक उच्च कर्तव्यों को पालन भी कर सकता हो। उसे अगली कक्षामें चढा जावेगा। किन्तु जो कक्षामें नियत किये हुये कर्तव्यों को पालनेमें बहुत न्यूनता करता हो और अपने से निचली कक्षा के व्रताभ्यासों में भी ढीला हो। उसे निचली कक्षोंमें किया जावेगा। प्रति दो मासके पश्चात् द्रव्य दमन परीक्षा तथा स्वास्थ्य परीक्षा भी हुआ करेगी। व्रताभ्यास के प्रत्येक विषयकी परीक्षा के पूर्णांक ६० होंगे। अधिष्ठाता महानुभाव सभा करके सब ब्रह्मचारियों के गत दो मासके जीवन पर विवेचना किया करेंगे और उत्तम मध्यम तथा निकृष्ट की कल्पना करके यथाशक्ति न्यायपूर्वक अंक दिया करेंगे।

१०— प्रति दो मास के पश्चात प्रत्येक ब्रह्मचारी के विशेष गुणों को उसके नामकी " शुक्लजन्मचरित्र पुस्तक " में और विशेष दोषों को " अशुक्लजन्म चारित्र पुस्तक " में अंकित किया जावेगा।

११— सब ब्रम्हचारी सभामें बैठते समय विद्याभ्यास की कक्षामें और व्रताभ्यास के क्रमके अनुसार पंक्ति बद्ध होकर बैठा करेंगे। किन्तु सन्ध्या हवन की अनुष्ठान करने तथा अपने गुणदोष लिखाने के समय केवल व्रताभ्यास के क्रमसे और आगम कालमें तथा स्वाध्याय कालमें विद्याभ्यास के ही क्रमसे बैठेंगे। इति।

गुरुकुल विद्यापीठ हरियानामें इन नियमोंके अनुसार कार्य हो रहा है। अभी नियम अधूरे हैं। उनमें अनेक उत्तमोत्तम नियमों की आवश्यकता है क्यों कि इस आवश्यकता की पूर्ति उस समय तक नहीं हो सकती जब तक कि उच्चकोटिके विद्वान् महानुभाव इस विषयपर विशेष ध्यान न दें। अत एव धार्मिक विद्वान् सज्जनों की सेवा में मैं अतिशय विनय पूर्वक निवेदन करता हूं कि वे इस विषयपर विशेष ध्यान देनेकी कृपा करें॥